बुनियादी शिक्षा

एक नई कोशिश

मई–जुलाई, 2008 अंक – 19

चार साल की बच्ची क्या जानती है?

ज्ञान का निर्माण

(विद्या भवन सोसायटी द्वारा आयोजित सेमीनार में पढ़े गए पर्चों और चर्चाओं का दस्तावेज)

अब हिन्दी में भी

ज्ञान के निर्माण को लेकर विचारों का संग्रहणीय दस्तावेज।

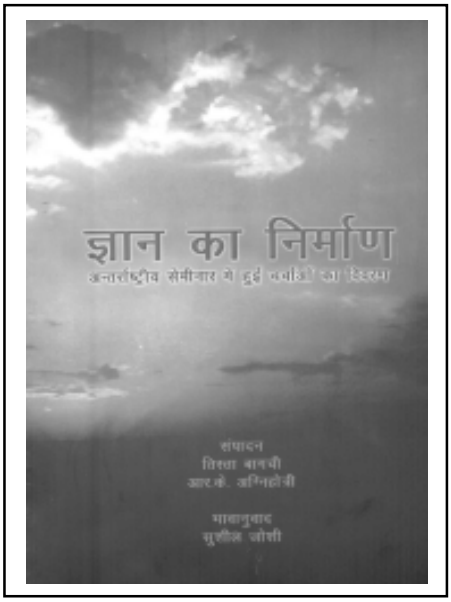

संपादन

प्रो. तिस्ता बागची एवं प्रो. आर.के. अग्निहोत्री

सहयोग राशि : एक सौ रुपए (डाक खर्च सहित)
कृपया सहयोग राशि ड्राफ्ट या मनिआर्डर से भिजवाएं।
(ड्राफ्ट विद्या भवन सोसायटी के नाम से बनवाएं)

सम्पर्क करें

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र
फतहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग, उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : 0294–2451497
email : vbsudr@yahoo.com

बुनियादी शिक्षा
एक नई कोशिश

मई–जुलाई, 2008 अंक – 19

परामर्श
हृदय कांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

संपादक
के. आर. शर्मा

सलाहकार
भागचंद्र कुमावत
गोविन्द रावल
प्रवीण डाभी
भरत जोशी
सुधा भण्डारी

सहयोग
कुमार अनुपम

चित्रांकन
प्रशांत सोनी

कम्प्यूटर सेटिंग
इसरार अहमद

संपादकीय पता
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

मुद्रक : संजय प्रिन्टर्स, उदयपुर

इस अंक में

चिट्ठी पत्री 2

(1) बच्ची सीखती कैसे है? 5
राधेश्याम थवाइत, ज्योति चौरड़िया, शोभा शंकर नागदा, कुमार अनुपम

(2) स्कूल में आने से पहले बच्ची कितना जानती है? 8
कुमार अनुपम

(3) विज्ञान में प्रयोग क्यों? 11

(4) कहां है वह शिक्षा का जादूभरा द्वीप? 13
अभय बंग

(5) शिक्षा में समुदाय की भागीदारी के मायने 17
हृदय कांत दीवान

(6) शिक्षक प्रशिक्षण में एक कोशिश 21
कोकिला पारिख

(7) शब्दों की दस्तक... 25
सरल काला

(8) बचपन से पलायन 27
के.आर. शर्मा

(9) पाठ्यपुस्तकों से हटकर शिक्षा 30
वि.वि. सिंह

(10) बच्चे, भाषा और शिक्षा 34
के. आर. शर्मा

(11) अध्यापक के लिए सामान्य टिप्पणियां 38
लेव तेलस्तोय

(12) बुनियादी शिक्षा और कार्यशाला 43
मुनीन्द्र कुमार मिश्र, उमेश चंद्र मिश्र

(13) शहनाज़ की डायरी 46
शहनाज़ डी.के.

सहयोग राशि : 15 रुपए

सौजन्य : सर रतन टाटा ट्रस्ट, मुंबई एवं राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद् (NCRI) हैदराबाद

चिट्ठी–पत्री

मुझे फरवरी–अप्रैल 2008 का ''बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश'' का अंक प्राप्त हुआ। यह अंक बहुत अच्छा है। इसमें कुछ लेख शिक्षा से संबंधित महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर सोचने हेतु प्रेरित करते हैं।

हृदय कांत दीवान का टी.एल.एम. पर लेख कई प्रश्न खड़े करता है जिस पर गहराई से चिंतन की आवश्यकता है, विशेषकर उन परिस्थितियों में जब हर प्राथमिक शिक्षक को टी.एल.एम. के लिए 500 रुपए का अनुदान दिया जा रहा है। टी.एल.एम. व टीचिंग एड में अंतर शायद शिक्षक महाविद्यालय में भी स्पष्ट नहीं किया जाता।

डी.एस. पालीवाल का लेख ज़मीनी हक़ीक़त को उजागर करता है जिसका आभास शायद पाठ्यक्रम निर्माताओं एवं पाठ्यपुस्तक लेखकों को होता ही नहीं है।

राधा भट्ट का लेख, गांधीजी की शिक्षा के बारे में सोच को स्पष्ट करता है व इसमें बुनियादी शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षा को जीवन व समुदाय से कैसे जोड़ा जाए, इसके बहुत अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।

वि.वि. सिंह के लेख में बच्चों में वाचन हेतु खुली पुस्तकालय व्यवस्था कितनी लाभप्रद हो सकती है व हमारे मन में अनेक भ्रामक चिन्ताएं होती हैं वे कितनी निरर्थक होती हैं, इसका अच्छा विवरण मिलता है।

शहनाज़ की डायरी के पन्ने छापने का विचार नूतन है। इनसे एक शिक्षक को अपने अध्यापन कार्य से संबंधित सूझ मिलती है।

आपको ऐसी अच्छी पत्रिका संपादन हेतु बधाई।

ए.बी. फाटक
प्रभात नगर , सेक्टर 5, हिरन मगरी
उदयपुर

पुनश्च : टी.एल.एम. पर जो लेख है ऐसे लेखों के मुद्दों पर शिक्षक महाविद्यालयों के प्राध्यापकों के साथ चर्चा आयोजित होनी चाहिए व उन्हें प्रेरित करना चाहिए कि वे ऐसे विचारों को अपने प्रशिक्षुओं तक पहुंचाएं। मेरे ख़्याल में शिक्षा संदर्भ केन्द्र के पास ऐसे कई मुद्दे हो सकते हैं। यह इस पत्रिका में प्रकाशित विचारों के फॉलोअप के रूप में किया जा सकता है।

बुनियादी शिक्षा का फरवरी–अप्रैल 08 अंक अनायास देखने को मिला। सुखद आश्चर्य हुआ कि उदयपुर से शिक्षा को लेकर इतनी गंभीर पत्रिका निकल रही है। जो लेख तुरंत पढ़ गया उसमें हृदय कांत दीवान का टी.एल.एम. बनाम टीचिंग एड और डी.एस. पालीवाल का 'सर, गुलाब के फूल होते हैं?' थे। दीवान ने ठीक तरह से समझा दिया है कि बुनियादी सवाल तो यही है कि बच्चे को क्या सिखाना चाहते हैं।

डी.एस. पालीवाल का आलेख शिक्षा को लेकर बड़ी–बड़ी बातें करनेवालों के लिए सबक है। इस महादेश में इस क़दर असमानताएं अभी भी मौजूद हैं। पालीवाल ने बहुत संवेदनशील मुद्दे को हम सबके समक्ष रखा है।

पत्रिका के बारे में दो तीन बातें और! एक तो प्रूफ संबंधी त्रुटियां सचमुच खटकती हैं, दूसरी बात यह कि चित्र बहुत पुराने भावबोध को उपस्थित करते लगते हैं।

बहरहाल, स्वागत और बधाई।

पल्लव
संपादक 'बनास'
403 बी, 3 वैशाली अपार्टमेंट्स, उदयपुर–313 002

बुनियादी शिक्षा अंक 18 आद्योपान्त पढ़ डाला। ज्ञान और कर्म में समन्वय की दृष्टि से डाइट की भूमिका पर चिन्तन के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई। गुलाब का फूल कहां? व शिक्षिका की डायरी ने शिक्षक मन को झिझोड़ा।
लेख के साथ–साथ कहानी विद्या को भी बढ़ाया जाए तो पत्रिका अधिक रूचिकर बन पड़ेगी।

कुसुम उपाध्याय
वरिष्ठ व्याख्याता
डाइट, गढ़ी, ज़िला– बांसवाड़ा

रपट–1

बच्ची सीखती कैसे है?

राधेश्याम थवाइत, ज्योति चौरड़िया
शोभा शंकर नागदा, कुमार अनुपम

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर द्वारा स्कूली शिक्षा को बेहतर बनाने की दिशा में एक कार्यशाला का आयोजन दिनांक 9–15 जनवरी 2008 तक किया गया। इस कार्यशाला में स्कूली शिक्षा को बेहतर बनाने संबंधी मसलों पर विमर्श किया गया। साथ ही बच्ची के सीखने की प्रक्रियाओं को कैसे पैना बनाया जा सकता है, इसपर अपने विचारों को आपस में बांटने का प्रयास किया गया।

कार्यशाला में देश की विभिन्न संस्थाओं से कार्यकर्ता आए। अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, एकलव्य (मध्यप्रदेश), छत्तीसगढ़ राज्य संसाधन केंद्र, रायपुर, कर्नाटक, उत्तरांचल, विद्या भवन बुनियादी स्कूल, रामगिरि, विद्या भवन सीनियर सेकेंडरी स्कूल उदयपुर, माध्यमिक विद्यालय, झामरकोटड़ा, उदयपुर, ज्ञानशाला (अहमदाबाद), बिहार और हजीरा (गुजरात) आदि जगहों पर शिक्षा के क्षेत्र में काम करनेवाले लगभग 80 विशेषज्ञों, शिक्षकों तथा कार्यकर्ताओं ने शिरकत की। पहले सत्र में परिचय से चर्चा प्रारंभ हुई। प्रारंभ में ही कहा गया कि इस कार्यशाला का मक़सद सवालों के जवाब देना नहीं है। हम इतना कर सकते हैं कि उन सवालों के जवाब कैसे ढूंढ़े जाएं, इस पर बात कर सकते हैं।

कार्यशाला से अपेक्षाएं

- हम इस कार्यशाला से उम्मीद करते हैं कि ग्रामीण बच्ची की समस्याओं को समझ सकें और उनके साथ कामों को आगे बढ़ा सकें।
- हम यह समझना चाहते हैं कि बच्ची आख़िर सीखती कैसे है?
- हम इस कार्यशाला के माध्यम से यह समझना चाहते हैं कि अच्छा स्कूल क्या होता है? एक अच्छे स्कूल में क्या–क्या होना चाहिए?
- हम विषयगत समस्याओं के हल के लिए कुछ कर सकें।
- हम शिक्षा के मसलों पर विमर्श कर सकें। और जो सवाल हैं उनको और पैना बना सकें। साथ ही शिक्षा में काम करने के दौरान मोटिवेशन मिल सके।

कार्यशाला की सफलता इस बात में निहित है कि हम कार्यशाला में कितना भाग लेते हैं। इस कार्यशाला के दौरान जान पाएंगे कि हम सब कितना कम जानते हैं। हमें और जानने–समझने की कितनी ज़रूरत है।

चार साल की बच्ची क्या–क्या जानती है?

चार साल की बच्ची क्या–क्या जानती है? प्रथमदृष्टया तो लगा कि चार साल की बच्ची कम ही जानती होगी। लेकिन थोड़ा विचार करने पर समझ में आया कि वास्तव में चार साल की बच्ची काफी कुछ जानती है। वह बोलना जानती है। जो कुछ भी कहा जाता है उसको समझती है। इसका मतलब यह कि चार साल की एक बच्ची या बच्चा भाषा जानता है। इस पर भी विचार किया जाए कि आखिर बच्ची भाषा कैसे सीखती है। ज़ाहिर है कि बच्ची स्कूल में बोलना नहीं सीखती। वह तो घर में अपने मां, पिताजी, भाई–बहनों, आस–पड़ोस के बड़ों और अपनी उम्र के बच्चों से सीखती है।

हम बच्चों को स्कूल में एक कोरी स्लेट समझते हैं, यह निराधार है। हमें यह भी समझना होगा कि जब बच्ची स्कूल जाती है उसके पहले वह काफ़ी कुछ जान और समझ लेती है। बच्ची के पास अपनी भाषा है, वह अच्छे–बुरे में भेद करने की क्षमता रखती है, सही और ग़लत को वह अपने स्तर पर परिभाषित करती है। छोटी और बड़ी चीज़ में वह फ़र्क़ कर पाती है। ऐसी और भी कई सारी बातें हैं जो बच्ची जानती है।

विद्या भवन सोसायटी द्वारा आयोजित कार्यशाला के एक सत्र में चार साल की बच्ची की क्षमताओं को टटोलने का प्रयास किया गया। इन सब बातों को शिक्षक और शिक्षा में कार्य कर रहे कार्यकर्त्ताओं को समझने की ज़रूरत है।

इस कार्यशाला में शिक्षण–अधिगम से जुड़े कई मुद्दों पर चर्चा हुई। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है ''चार साल की एक बच्ची क्या–क्या जानती है?'' यहां हम इसी मुद्दे पर अपने को केन्द्रित करेंगे।

इस बिन्दु पर प्रतिभागियों ने समूह कार्य में जो चर्चा की उसका विवरण निम्नलिखित है–

- अभिव्यक्त करने की क्षमता – बच्ची अपनी बात कह पाती है। समझ पाती है।
- प्रकृति के बारे में जानती है।
- दैनिक जीवन के बारे में जानती है।
- लोगों को पहचानती है।
- सही–ग़लत की पहचान कर लेती है।
- परिवार के रिश्तों के बारे में जानती है।
- स्वाद का पता कर लेती है।
- कम –ज़्यादा, छोटा–बड़ा जानती है।
- अपना–पराया जानती है।

1. अपनी बातों को व्यक्त करने की क्षमता

बच्ची जब बोलती है तो उसके पास भाषा की समझ है। उसको यह भी समझ है कि क्या कहना है।

बच्ची द्वारा बोले जानेवाले कुछ वाक्यों की फेहरिस्त बनाई गई जो इस प्रकार है–

(i) मेरा नाम गुड़िया है।

(ii) मुझे रोटी खानी है।

(iii) मैं आग तापूंगी।

(iv) कल झूला झूली मेले में।

(v) मैं भी जीजी के साथ जाऊंगी।

(vi) मेरी गुड़िया की शादी है।

(vii) शेरू आ जा।

(viii) मुझे यहीवाला चाहिए।

(ix) मैं भी रोटी बनाऊंगी।

(x) लाल गेंद मैं भी लूंगी।

(xi) देखो, दूध गिर गया।

(xii) मैंने भी साड़ी पहनी है।

(xiii) अमिया खट्टी है, मुझे नहीं खानी।

(xiv) भैया की स्लेट मैंने नहीं तोड़ी, दीदी ने तोड़ी है।

(xv) जीजी कहां गई?

यह सब बच्ची ने कैसे सीखा? ज़ाहिर है कि उसने यह सब स्कूल में तो नहीं सीखा। क्या यह सब सीखने में गुड़िया को डांट–मार खानी पड़ी होगी? नहीं ना।

चलिए, देखने की कोशिश करते हैं कि इन वाक्यों को बोलने के लिए बच्ची को किस प्रकार का ज्ञान होना चाहिए। समूह चर्चा में ये बातें निकलकर आईं–

(i) व्याकरण का ज्ञान चाहिए।

(ii) कम–ज़्यादा का ज्ञान

(iii) रिश्तों की पहचान

(iv) ज़रूरत का अहसास

(v) नये–पुराने का पता

(vi) लिंग–भेद (शारीरिक संरचना, कपड़ों की समझ)

(vii) अधिकार

(viii) इच्छा, ज़िद, रूठना, मनवाना

(ix) डर, शिकायत

(x) तुलनात्मक ज्ञान आदि पता होने चाहिए।

2. यह सब बच्ची कैसे सीखती है?

(i) क्रिया एवं अभ्यास से सीखती है।

(ii) परिवार, पड़ोस या परिवेश के साथ अन्तःक्रिया से सीखती है।

(iii) सुनकर, देखकर, अवलोकन करने से, बातचीत से, खेल–खेल में सीखती है।

(iv) बच्ची अपने अनुभव से सीखती है।

(v) बच्ची में सीखने की क्षमता जन्मजात होती है। वह परिवेश में देखती है, उसे अपने से जोड़ते हुए देखती है और सीखती है। बच्ची अपनी ज़रूरत के कारण सीखती है।

(vi) अनुकरण से सीखती है।

इस प्रकार परिवार, परिवेश, वातावरण बच्ची के ज्ञान

को उभारते हैं। बच्ची visual image बनाकर शब्दों को सीखती है। उनका निर्माण करती है। बच्ची जब बहुत से वाक्य बोलती है तो वह सामान्यीकरण की क्रिया द्वारा वाक्यों के नियम पकड़ती है।

इसी के साथ सही–ग़लत की पहचान, परिवार के रिश्ते, कम–ज़्यादा के ज्ञान पर भी समूह चर्चा की गई। इन बिन्दुओं पर समझ बनाने की कोशिश की गई। प्रस्तुतीकरण में जो सार निकलकर आया वह इस प्रकार है–

सही ग़लत की पहचान

बच्ची के सही–ग़लत की पहचान पर प्रतिभागियों की दो राय थी। पहली राय कि बड़ों के द्वारा बताया जाना कि सही क्या है और ग़लत क्या है। दूसरी राय यह थी कि बच्ची की दृष्टि में क्या ग़लत है और क्या सही, इसको समझने की ज़रूरत है, तथा इसके प्रति संवेदनशील होने की ज़रूरत है।

कुछ ऐसे सवाल भी उठे जिनके जवाब ढूंढ़े जाने हैं जैसे, बच्ची के भाषा सीखने व नैतिकता सीखने में क्या फ़र्क़ है?

चर्चा में यह भी निकलकर आया कि बच्ची के लिए उसकी इच्छानुसार कार्य करने देने पर वह सही है और यदि बच्ची को नुकसान पहुंचता है तो वह ग़लत है।

परिवार के रिश्ते

शुरूआती ज्ञान बच्ची अपनी मां से सीखती है। रिश्तों का अहसास बच्ची को माता–पिता, परिवार के अन्य सदस्य, पास–पड़ोस, आस–पास का वातावरण, दोस्त आदि के साथ अन्तःक्रिया के फलस्वरूप होता है। वह अपने आस–पास की दुनिया का अवलोकन करने की कोशिश करती है और खोजने की कोशिश करती है। प्रत्येक बच्ची अपने–आप में अलग होती है। और एक ही परिवेश की दो बच्चियों का ज्ञान एक सा नहीं होता।

हम यह देखते हैं कि दो बच्चियां एक ही परिवेश में रहती हैं। उनमें से एक छिपकली से डरती है लेकिन दूसरी नहीं डरती है।

महसूस करना, अधिकार जताना, इच्छा जताना, अपनी बात मनवाना, अपने मन का करना, दोस्तों और चीज़ों के नाम जानना, डरना और शिकायत करना, उत्सुकता यह सब कुछ अलग–अलग तरह से बच्ची सीखती है।

बहरहाल एक नन्हे बच्चे या बच्ची को समझने की यह शुरूआत है। यदि हम बच्ची का गहराई से अवलोकन करें तो और भी कई सारी बातें समझ में आएंगी। यह तो साफ़ है कि यहां बच्ची को लेकर जो भी कुछ कहा गया है वह काफ़ी कम है।

इस लिहाज़ से इस मसले ने हमें बच्ची के बारे में समझ विकसित करने का एक अवसर दिया है।

ज्योति चौरड़िया, कुमार अनुपम, शोभा शंकर नागदा, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत।
राधेश्याम थवाइत, छत्तीसगढ़ राज्य संसाधन केन्द्र, रायपुर में कार्यरत।

रपट–2

स्कूल में आने से पहले बच्ची कितना जाती है?

कुमार अनुपम

विद्या भवन सोसायटी द्वारा आयोजित कार्यशाला के एक सत्र में यह समझने का प्रयास किया गया कि बच्ची आख़िर भाषा कैसे सीखती है? दो साल की बच्ची कितना कुछ बोलती है। क्या वह हम वयस्कों की नक़ल करती है?

बच्ची के भाषा सीखने संबंधी दो सिद्धांतों पर चर्चा की गई –

1. प्लेटो समस्या
2. ऑरवेल समस्या

1. प्लेटो समस्या

- बच्ची काफ़ी कम समय में बहुत ज़्यादा सीखती है। जैसे कि ढाई साल की एक बच्ची इस पूरे समय में से लगभग 50 फ़ीसदी यानेकि लगभग 15 माह तो सोने में बिताती है और 5 महीने वह खाना–पीना, शौच आदि काम करती है। अब बचा दस महीने का समय। इसी में वह भाषा सीखने की क्षमता विकसित करते हुए भाषा बोलना और समझना सीखती है।
- भाषा सीखने की क्षमता उसे कहां से मिलती है? इसके जवाब में ग़ौरतलब बात है कि वह अपने परिवेश और पर्यावरण से संवाद करती है और वह भाषा की गूढ़ बातों को समझती है। वह नए–नए शब्द गढ़ती है। वह भाषा के आधार पर कई चीज़ों की तुलना और वर्गीकरण करना सीखती है। बच्ची केवल चीं–चीं, चां–चां ही नहीं करती है बल्कि सार्थक शब्दों को बोलना सीखती है। यही नहीं एक नन्हीं–सी बच्ची अपनी ज़रूरत के लिए ढेर सारे वाक्य बोलती है।
- क्या यह अनुकरण से संभव है? अनुकरण से मतलब नकल से है। यह देखने में आया है कि बच्ची सुनकर सीखती है। यह बात तो सही है। लेकिन अपने दिमाग़ के स्तर पर वह सुनी हुई ध्वनि को आत्मसात् करके बोलने का प्रयास करती है। आठ महीने की एक बच्ची की आवाज़ ऐसी लगती है जैसे वह बातें कर रही हो। मगर वह तो सिर्फ़ सुनी हुई भाषा की लय को बोलने का प्रयास कर रही है।
- इस पर भी विचार किया गया कि बच्ची के सीखने में मुख्य योगदान प्रासंगिकता का है। जैसे कि बच्ची को पिता की समस्याओं आदि से कोई मतलब नहीं है या मम्मी की चूड़ी, साड़ी आदि से कोई मतलब नहीं होता। बच्ची को क्या अच्छा लगता है। उसको किस चीज़ की ज़रूरत है। या उसके संदर्भ की जो बातें या चीज़ें हैं उससे यदि लगाव है तो वह उन पर ध्यान देती है। और उनके बारे में वह

काफ़ी कुछ सीखती है और वह काफी कुछ बोलकर बता पाती है। जैसे कि एक बच्ची कोई खेल खेल रही है तो उसका सारा ध्यान उसी में होता है। और उससे संबंधित क्रिया को समझती है और नए वाक्य बनाकर बोलती है। यह उसकी मौलिकता है। यदि बच्ची के संदर्भ से कोई काम आदि जुड़ा हो तो वह एकाग्र होकर उसे ग्रहण करती है। इसके लिए उसकी शक्ति प्रबल हो जाती है।

यह कहा जा सकता है कि इतना कम इनपुट मिलने पर भी बच्ची अपने दायरे का विस्तार काफ़ी कर लेती है। यही हम वयस्कों को समझने की जरूरत है। शायद हम इस बात को समझ लें तो बच्ची के सीखने की प्रक्रियाओं को समझने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। इस आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि बच्ची जब स्कूल में आती है तो वह कोरी स्लेट नहीं होती है। उसके पास अपनी भाषा है, अपनी दुनिया है। ज़रूरत है उस बच्ची को और उसकी दुनिया को समझने की।

2. ऑरवेल समस्या

ऑरवेल समस्या को समझने के लिए कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

- यदि प्याज के भाव बढ़ रहे हैं तो प्याज के भाव बढ़ने के कई कारण हो सकते हैं। जब तक इन सारे कारकों को नियंत्रित नहीं किया जाता तब तक प्याज के भाव को कम नहीं किया जा सकता। यानेकि प्रयास तो काफ़ी किए जा रहे हैं लेकिन भाव कम नहीं हो रहे हैं। साफ़ है कि इस संदर्भ में प्रयास सफल नहीं हो पा रहा है और परिणाम सार्थक नहीं है।
- सिगरेट के बारे में हम सब जानते हैं कि यह स्वास्थ्य के लिए नुकासानदायक होती है। लेकिन फिर भी इसका उत्पादन बढ़ता ही जा रहा है।
- यदि कोई बच्ची स्कूल में आती है तो उसको ढेर सारी किताबें और लिखने की सामग्री भी दी जाती है। उसको लिखने–पढ़ने का अभ्यास भी कराया जाता है लेकिन फिर भी वह नहीं सीख पाती है।
- अख़बार में समाज और राजनीति के बारे में काफी कुछ जानकारियां दी जाती हैं लेकिन इनके प्रति आम जनता की समझ नहीं विकसित हो पाती है।
- जब हम बच्ची को औपचारिक रूप से या दबाव में सिखाने का प्रयास करते हैं तो वह उसमें दिलचस्पी नहीं लेती है क्योंकि वह उसकी दुनिया से जुड़ी हुई बात नहीं होती।

कुल मिलाकर इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि आप इनपुट तो काफ़ी दे रहे हैं लेकिन आउटपुट नगण्य है। बच्ची के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि जब हम बच्ची की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ उसे सिखाने की बात करते हैं तो वह नहीं सीखती है।

कुमार अनुपम, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत।

रपट–3

विज्ञान में प्रयोग क्यों

कार्यशाला के सत्र में सभी सहभागियों को एक प्रयोग करने का मौक़ा दिया गया। विज्ञान में एक प्रयोग मोमबत्तीवाला लगभग हर राज्य की विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में होता ही है। इस प्रयोग के बारे में चर्चा हुई कि इससे हम किस प्रकार के निष्कर्ष निकालते हैं। चर्चा में एक बात यह निकलकर आई कि इस प्रयोग से हवा में कितनी ऑक्सीजन है इसके बारे में निष्कर्ष निकालने को बाध्य किया जाता है। इस प्रयोग को सब भागीदारों से करने को कहा गया। सभी ने इस प्रयोग को किया। चर्चा का सार इस प्रकार है–

प्रयोग में जो करना था वह यह कि प्लेट में एक जलती हुई मोमबत्ती को खड़ा करके उसमें पानी भर देना था। और उस जलती हुई मोमबत्ती पर एक कांच का गिलास औंधा रखना था। सब ने इस प्रकार से प्रयोग किया तो पाया कि पानी गिलास में चढ़ जाता है। कई साथियों ने इस प्रयोग को दो बार या तीन बार करके देखा।

सबके प्रयोग करने में एक बात तो समान थी कि जलती हुई मोमबत्ती पर गिलास को ढंकने से उसमें पानी ऊपर चढ़ जाता है।

अब बारी थी कि हम इस प्रयोग से क्या सिद्ध कर पाते हैं? मोमबत्ती क्यों बुझी और पानी क्यों ऊपर चढ़ा? पाठ्यपुस्तकों में जो व्याख्या की गई है वह यह है कि इस प्रयोग से हवा में ऑक्सीजन की मात्रा का पता चलता है। जैसे ही गिलास में ऑक्सीजन खत्म होती है उसका स्थान लेने के लिए गिलास में पानी चढ़ जाता है। लेकिन यह भी मत आया कि आक्सीजन के जलने पर कार्बन डाइऑक्साइड भी तो बनती है। इसलिए गिलास में कोई खाली स्थान तो नहीं बनता होगा।

दो मोमबत्ती जलाने पर क्या होगा? पानी उतना ही चढ़ेगा या कम या ज़्यादा?

इसके पहले सबने यह पता कर लिया था कि एक मोमबत्ती को जलाकर उस पर कांच का गिलास रख देने पर भी पानी की मात्रा बराबर नहीं चढ़ती।

दो मोमबत्ती जलाकर भी सभी ने प्रयोग करके देखा। यह देखा गया कि दो मोमबत्ती जलाने पर पानी गिलास में ज़्यादा चढ़ता है। लेकिन कुछ साथियों ने यह भी करके देखा कि दो बराबर ऊंचाई की मोमबत्तियों को लगाकर जलाने पर पानी के स्तर में ज़्यादा फ़र्क़ नहीं आता है। लेकिन यदि मोमबत्ती छोटी और बड़ी लें तो पानी के स्तर में फ़र्क़ आता है।

क्या किसी फ़र्क़ तरीक़े से भी पानी गिलास में चढ़ जाता है? इस बारे में एक समूह ने प्रयोग करके देखा। इस समूह ने एक गिलास में गर्म पानी भरकर थोड़ी देर रहने दिया और फिर उसको

खाली करके प्लेट में पानी भरकर उल्टा कर दिया। थोड़ी देर के बाद ही यह देखा गया कि बिना मोमबत्ती के ही पानी गिलास में चढ़ गया। इस प्रयोग ने इस पूरे ही मसले पर नए सिरे से सोचने को बाध्य कर दिया।

क्या वजह है कि गिलास में पानी ऊपर चढ़ा? जब हम इस सवाल पर ग़ौर फ़रमाते हैं तो वह तथाकथित प्रचलित जवाब तो निरस्त हो जाता है जो कि स्कूल की पाठ्यपुस्तकों में लिखा होता है।

तो यहां कुछ और वजह से पानी ऊपर चढ़ रहा है। तो वह वजह क्या है?

दरअसल इस प्रयोग का मक़सद निष्कर्ष निकालना नहीं था बल्कि यह समझना था कि हम आख़िर विज्ञान में प्रयोगों के माध्यम से बच्चों में किन कौशलों का विकास करना चाहते हैं? इस प्रयोग में जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे तो हक़ीक़त से ज़रा भी मेल नहीं खाते।

प्रयोग की हक़ीक़त

अवलोकन में सभी सहभगियों ने देखा कि जलती हुई मोमबत्ती को गिलास से ढंकने से मोमबत्ती बुझ जाती है और बर्तन का पानी गिलास के अन्दर थोड़ा ऊपर चढ़ जाता है। तत्पश्चात् गिलास के अन्दर पानी के चढ़े हुए भाग को नाप कर देखा गया कि पानी गिलास में कितना ऊपर चढ़ा? सहभागियों ने देखा कि गिलास में पानी 1/5 भाग ऊपर की ओर चढ़ गया है। इस पर सहभागियों की प्रतिक्रिया रही कि गिलास के अन्दर के ऑक्सीजन के जल जाने से गिलास के अन्दर का भाग खाली हुआ और उस खाली भाग में पानी ऊपर चढ़ गया। लेकिन जब इसी प्रयोग को दुबारा दो मोमबत्तियां जलाकर किया गया तो पाया गया कि गिलास का पानी पहले की तुलना में और ज़्यादा ऊपर चढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में सहभागियों के समक्ष प्रश्न आया कि ऐसा क्यों हुआ?

इस प्रयोग से क्या अब भी हम कह सकते हैं कि हवा में ऑक्सीजन का प्रतिशत 1/5 है? तत्पश्चात् सभी समूहों ने अलग–अलग इस प्रयोग को किए और अपने अवलोकन को दर्ज कर प्रस्तुत किया। यह भी दर्ज किया गया कि बड़ी मोमबत्ती छोटी मोमबत्ती की तुलना में जल्दी बुझ जाती है। चर्चा में यह निकलकर आया कि पाठ्यपुस्तकों में ऐसे बहुत से प्रयोग दिये गये हैं जिनकी सत्यता की जांच हमें करनी चाहिए।

यदि हम पूरे मसले पर विचार करें तो बच्चों को माध्यमिक स्तर पर यह भी पता नहीं है कि जलने में कौनसी गैस सहायक होती है। यदि उन्होंने ऐसे कोई प्रयोग करके देखे होते तो फिर यह जानकारी उनके लिए मददगार होती। दूसरी बात हमें यह भी पता नहीं कि हवा में कितनी ऑक्सीजन है। बहरहाल, यदि बच्चों को इस तरह के प्रयोगों से एकदम मौलिक रूप से सोचने को प्रेरित किया जाए तो वे सही निष्कर्ष निकालेंगे, यह तो नहीं कहा जा सकता लेकिन इतना ज़रूर है कि उनकी समझ के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रयोग में सबसे अहम पहलू यह है कि इसमें जो भी कुछ हो रहा है उसका अवलोकन किया जाए और प्रयोग को अलग–अलग परिस्थितियों में करने की ज़रूरत है। यदि इस प्रयोग को अलग–अलग मौसमों में किया जाए तो क्या कोई फर्क आएगा? क्या पानी के स्तर में कुछ फ़र्क़ आ सकता है? सहभागियों ने और भी ऐसी परिस्थितियों के बारे में सोचा।

अनुभव

कहां है वह शिक्षा का जादूभरा द्वीप?

अभय बंग

इस बात का मुझे बड़ा खेद है कि मैं अपने बेटे आनंद को वैसा शैक्षणिक अवसर नहीं दे सकता हूं, जैसा कि मुझे मिला था। नवीं कक्षा तक मेरी शिक्षा गांधीजी की नयी तालीम पद्धति से हुई, उसमें भी चार साल तो प्रत्यक्ष सेवाग्राम आश्रम के नयी तालीम विद्यालय में ही बीते। प्रकृति से दूर, चारदीवारी के अंदर पढ़ाया हुआ रसहीन पाठ शिक्षा नहीं है। गांधी प्रणीत नयी तालीम का मुख्य विश्वास तो प्रकृति के सानिध्य में समाजोपयोगी भूमिका निभाते हुए मिलनेवाले संस्कारों पर है, एतद्द्वारा होनेवाले बुद्धि विकास पर, कौशल पर है। उसी को शिक्षा माना है। इस शिक्षा पद्धति को विकसित करने के लिए गांधीजी ने रवींद्रनाथ ठाकुर से शांतिनिकेतन के आर्यनायकम्–आशादेवी दंपती को मांग लिया था। इससे गांधीजी की शिक्षा–पद्धति को रवीन्द्रनाथ के प्रकृतिप्रेम और कलाप्रेम का जोड़ मिल गया। सेवाग्राम का विद्यालय उन्होंने ही शुरू किया। मेरे माता–पिता भी उस प्रयोग में शामिल हो गए। इस विद्यालय की शिक्षा–पद्धति कैसी निराली थी, इसके कुछ उदाहरण यहां पेश किए जा रहे हैं।

वन और वन्यप्राणी–संरक्षण आज का आम विषय है। लेकिन 27 साल पहले, जब इस विषय का आम लोगों को परिचय भी नहीं था, तब हमारे पाटील गुरुजी ने मराठी भाषा के पाठ में हमें हमारे साथ कटहल के घने वृक्ष की शाखाओं पर बैठकर दिए थे। वहां उन्होंने हमें जंगल की कहानियां बतायी थीं, उन्होंने किए हुए शिकार की कथा सुनायी थी, शिकार में छोटे बच्चेवाली मां हिरणी मारी जाने पर उन्हें कैसी वेदनाएं हुईं, उन वेदनाओं के कारण कैसे उन्होंने हमेशा के लिए बंदूक का त्याग कर दिया और रात–रातभर झरने के किनारे पेड़ पर बैठकर विविध प्राणियों का दर्शन करते रहे, कैसी उन प्राणियों के लिए आत्मीयता पैदा हुई, इन सबका वर्णन सुनाया था। और उनके साथ पेड़ पर बैठकर, सारे प्राण कानों में लाकर हमने वह सुना था। इसी से जंगल का परिचय हुआ और प्रेम पैदा हुआ। रसहीन पाठ पढ़ते रहना और 'वन्यप्राणी यानी पशु' जैसे निरर्थक बातों को रटते रहना, आज मेरे बेटे की मराठी शिक्षा की यह अवस्था है। गढ़चिरोली जैसे जंगल के ज़िले में होने पर भी उसके स्कूल का जंगल के साथ कोई ताल्लुक नहीं है।

हमारी मराठी की शिक्षा में तुकाराम महाराज के

अभंग हमें कभी कड़वी दवा जैसे नहीं लगे। आषाढ़ की एकादशी के दिन विद्यालय में 'संतमेला' संपन्न होता था। भिन्न–भिन्न संतों के भजन शास्त्रीय संगीत में बिठाए जाते थे, संतों के जीवन पर नाटक पर नाटक रचकर खेले जाते थे, विद्यार्थियों से लेख लिखवा कर हस्तलिखित पत्रिका निकाली जाती थी, संपूर्ण विद्यालय पंद्रह दिन इसी माहौल में हमरंग रहता था। इसी दौरान, तुकाराम महाराज के 'जे का रंजले गांजले' अभंग की तीन प्रकार की तर्ज़ें मैंने सीख लीं ओर उसके साथ भैरवी राग भी। संतों का काव्य, उनका इतिहास, उनका दर्शन हम गहराई से सीख रहे थे। फ़र्क़ इतना था कि उन पर भाषा, इतिहास, संगीत, दर्शन ऐसे लेबल लगे हुए नहीं थे।

स्कूलों में वनस्पतिशास्त्र अक्सर पुस्तकों में दी हुई आकृतियों से या कांच की बोतलों में रखे हुए नमूने के आधार पर सिखाया जाता है। ज़ाहिर है, जड़ों की, पत्तियों की विविध प्रकार की जानकारी ध्यान में रखना उकतानेवाली बात हो जाती है। सेवाग्राम और नयी तालीम विद्यालय का लंबा चौड़ा परिसर था और उसमें विविध प्रकार के पेड़ थे। शुरूआत में तो हमारे शिक्षक हमें साथ लेकर इस परिसर में केवल घूमा करते और घूमते हुए पेड़ों के नाम बताते जाते। कभी पत्तों, फूलों, फलों की ओर भी ध्यान आकर्षित करते। (इसी के साथ हमारा बेर, करौंदा, कच्चा आम खाना भी चलता। बाद में ऐसी सखाद्य शिक्षा पद्धति मैंने केवल अमरीका में देखी, लेकिन वहां तो चाकोलेट, कोकाकोला चलता था।) फलों का स्वाद ग्रहण करते समय बेर और आम में क्या समानता है और ड्रूप नामक फल की क्या विशेषता है, यह समझाया जाता। इस घूमने में से और सृष्टि–दर्शन से वनस्पतिशास्त्र की सूक्ष्म विशेषताओं का ज्ञान हमें मिला। 'बॉटनी' की सगुण 'थ्योरी' (शास्त्र) हमारी चारों ओर बिखरी हुई थी, उसे देखने, ग्रहण करने की कला हमारे शिक्षक ने हमें सिखाई।

सातवीं कक्षा में हमारे शिक्षक ने परीक्षा के रूप में हर विद्यार्थी को पत्तों और फूलों का वैज्ञानिक अल्बम बनाने को कहा था और हमने आश्रम का पूरा क्षेत्र छान डाला था। आज पचीस साल के बाद भी सेवाग्राम परिसर में 'पामेट डायव्हर्जंट रेटिक्यूलर' जातिवाले पत्तों के पेड़ कहां–कहां हैं, यह मैं यहां बैठकर देख सकता हूं। विश्वविद्यालय की परीक्षा में मैं इस विषय में प्रथम आया और मेरे प्राध्यापक मेरी प्रशंसा करने लगे, तब मैंने मन ही मन में कहा, 'सर, वनस्पतिशास्त्र मैंने कॉलेज में नहीं सीखा, सेवाग्राम के विद्यालय में सीखा है।

प्रतिदिन सुबह तीन घंटे का उत्पादक श्रम यहां की शिक्षा पद्धति का अविभाज्य भाग है। गांधीजी का

'ब्रेड–लेबर', 'स्वश्रम की रोटी' का सिद्धान्त तो उसके पीछे थे ही लेकिन साथ ही, विनोबाजी की समाजोपयोगी, कौशल तथा विज्ञान–शिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से भी उसके पीछे थी। इसके अनुसार मैं कुछ दिन गोशाला में काम करता था। वहां गोशाला के नए मकान के निर्माण का काम चल रहा था। मेरे शिक्षक ने मुझपर एक ज़िम्मेदारी सौंपी। एक गाय प्रतिदिन औसतन कितनी बालटियां पानी पीती है, वह देखकर कुल गायों का हौज़ लगेगा, इसके लिए कितनी ईंटें लगेंगी, इस सबका प्रत्यक्ष गणित कर ईंटों की ऑरडर देने का काम मुझे सौंपा गया था। इस सारे काम को, गणित को करने में एक हफ़्ता लग गया। घनता की कल्पना तथा विविध आकार का घनमाप कैसे निकालना आदि गणित की पद्धतियां मैंने इस काम के द्वारा सीखा। अन्यथा, एक हौज़ में दो नल हैं, एक नल से हौज़ अमुक समय में भर जाता है, दूसरे से अमुक समय में खाली होता है, तो हौज़ को खाली होने में कितना समय लगेगा, जैसे गणित के निरर्थक सवाल हल करने में मेरा समय बेकार जाता और इस गणित का जीवन के साथ क्या संबंध है, मेरा यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहता।

काम के द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा का दूसरा उदाहरण है रसोईघर का काम। आठ–आठ विद्यार्थियों की टोलियां बनायी जातीं और बारी–बारी से हर टोली को रसोई का काम संभालना पड़ता। प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति कितने रुपए का बजट मान्य है, इसकी जानकारी टोली को दी जाती। बजट की मर्यादा संभाली जाए, भोजन आहारशास्त्र की दृष्टि से संतुलित हो, सबको संतोष देने वाला हो, इन तीनों का मेल बिठाते–बिठाते हमारी नाक में दम आ जाता। आलू सस्ता है, लेकिन उसमें आहार–तत्त्व सिर्फ स्टार्च ही है, तो आलू को छोड़ देना पड़ता। आई.सी.एम.आर. की पोषण तालिका के अनुसार तेल की मात्रा तय करें, तो वह बजट के बाहर चली जाती। इसी में से आहारशास्त्र, घरेलू अर्थशास्त्र और रसोई बनाना हमने सीखा। हरी धनिया में 10600 युनिट्स 'अ' जीवनसत्त्व है, यह बात पक्की ध्यान में रह गयी– मेरे दस साल की मेडिकल कॉलेज की पढ़ाई के कारण नहीं, पर आठवीं कक्षा में रसोईघर में किए हुए काम के कारण। कुकर की उष्णता और भाप का पदार्थ विज्ञान भी इसी रसोईघर में सीखने मिला।

कृषि के लिए हर विद्यार्थी को ज़मीन का एक छोटा टुकड़ा दिया जाता था। उसमें क्या बोना, मशक्कत कैसे करना, खाद कब और कौन–सी देना, सब विद्यार्थी को ही सोचना पड़ता। कुएं से पानी देना पड़ता। कभी पानी देने की पारी रात को होती। मध्य रात में लोमड़ियों के दर्शन लेते हुए यह काम करना पड़ता। खेती के लिए ऍग्रोनमी और हार्टिकल्चर सीखना पड़ता। खाद का रसायनशास्त्र समझ लेना पड़ता। कई बार अनुभवी किसानों के पास जाकर मार्गदर्शन लेना पड़ता। ऐसे वातावरण में खेती कार्य में हम क्या नहीं सीखे?

अपने इस जादूभरे स्कूल में भूगोल मैंने पाठ्यक्रम की पुस्तकों से नहीं पढ़ा। भारत के विविध प्रांतों से और विदेशों से अतिथि आते। हमारे लिए उनके भाषण आयोजित किए जाते। वे अपने अपने प्रांत की, देश की विशेषता बताते। विद्यार्थियों के साथ उनकी प्रश्नोत्तरी होती। इसके अलावा, हम विद्यार्थी डाक–टिकिटों का संग्रह करते, ग्रंथालय से प्रवास वर्णन आदि पढ़ते। इन सब माध्यमों से हमारा भूगोल का ज्ञान बढ़ता गया। भूगोल हमारे लिए जीवंत विषय था।

राजनीति और सामान्य ज्ञान के लिए हमारे शिक्षक ने एक अलग ही पद्धति अपनायी थी। रोज़ शाम को वे हम सबको अख़बार की विशेष ख़बरें पढ़कर

सुनाते और साथ–साथ विशेष घटनाओं के पीछे का इतिहास, राजनीति समझाते। दूसरे महायुद्ध के बाद दुनिया का पूंजीवादी तथा साम्यवादी गुटों में हुआ विभाजन, उसका इतिहास, अमरीका, रशिया में पैदा हुए वैमनस्य का कारण, क्यूबा की क्रांति, जैसी जानकारी हमें इस वर्ग से मिली।

गांधीजी का शिक्षण विचार, रवींद्रनाथ का कलाप्रेम और उनको प्रत्यक्ष में लाने के लिए अपनाए हुए विविध सृजनशील तरीक़े, इनके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। परीक्षा केवल प्रश्नपत्र के उत्तर लिख देने से पूरी नहीं होती थी। इसके अलावा, रसोई बनाने से लेकर भाषण देने, लेख लिखने तक विविध अंगों की परीक्षा ली जाती थी। सर्वाधिक निराला प्रयोग यह था कि कक्षा की कल्पना ढीली रखी थी। हर विद्यार्थी कुछ विषयों में अधिक अच्छा और कुछ में कम अच्छा होता है। उसको सब विषयों में एक ही कक्षा में बिठाने के बदले हर विषय में उसका स्तर देखकर विषय के लिए अलग कक्षा दी जाती थी। इसलिए मैं एक ही समय पर अंग्रेजी की सातवीं, गणित की नवीं और मराठी की दसवीं कक्षा में था।

इस शिक्षा पद्धति का मुख्य भाग था कि शिक्षा श्रमनिष्ठा, स्वावलंबन, समता, सामूहिकता, ये सब बातें वहां रोज़मर्रा के व्यवहार में अमल में लाई जाती थीं और आत्मसात् की जाती थीं। इसके अलावा, इन मूल्यों की स्थापना के लिए चलनेवाले समाज परिवर्तन के व्यापक आंदोलन में विद्यार्थियों का सहभाग होता। हर साल कुछ दिन विद्यालय पूरा बंद रहता और हम विद्यार्थी भूदान अभियान में भाग लेने चले जाते।

इस प्रकार अपने स्कूल का जब वर्णन मैं करता हूं तब कई लोग पूछते हैं, 'अभी है क्या यह विद्यालय? हम अपने बच्चों को वहां भेजना चाहते हैं।' इस स्कूल की यही आख़िरी बात कहनी बाक़ी रही है।

गांधीजी के ग्रामोद्योग को शासन के कबाड़े में डाल दिया तथा प्रस्थापित उद्योग–कारख़ानों की स्पर्धा में वे टिक नहीं सके। इस विद्यालय को सरकारी मान्यता प्राप्त न होने के कारण, वह भी प्रस्थापित शिक्षा व्यवस्था की स्पर्धा में टिक न सका। शासकीय मान्यता न होने के कारण यहां के विद्यार्थी का शैक्षणिक भावी अनिश्चित–सा रहता। केवल इसी एक कारण से पालक अपने बच्चों को इस स्कूल में भेजना नहीं चाहते थे। भूदान–ग्रामदान के कई कार्यकर्ताओं ने अपने बच्चों को ऐसे विद्यालयों में भेजा, लेकिन एक विशिष्ट काल के बाद उन्हें वहां से निकाल लिया। उनका भी यही कारण है। एक आक्षेप इस शिक्षा पद्धति पर अक्सर किया जाता है कि यहां विद्यार्थियों का समय पढ़ाई के बदले शारीरिक श्रम में व्यर्थ जाता है और इसलिए नई तालीम के विद्यार्थी ज्ञान में पीछे रहते हैं। मद्रास प्रांत में बुनियादी तालीम लागू की गई तब इसी ग़लत धारणा के कारण उसका विरोध हुआ था और तत्कालीन मुख्यमंत्री राजाजी को इस्तीफ़ा देना पड़ा था। समाज और शासन नई तालीम में प्राप्त शिक्षा योग्यता को गिनती में ही नहीं लेते थे। किसी भी परिवर्तन को आस–पास का विरोधी वातावरण दीर्घ काल तक टिकने नहीं देता। गांवों में भी यही दिखाई देता है। समाज की स्वार्थ और स्पर्धा की लहरों ने एक दिन शिक्षा के इस अद्‌भुत द्वीप को भी निगल लिया।

अपने बच्चों को मैं इस द्वीप पर भेजना चाहता हूं, लेकिन यह जादूभरा द्वीप अब कहां है?

अभय बंग, सोसायटी फॉर एजुकेशन , एक्शन एण्ड रिसर्च इन कम्यूनिटी हेल्थ
शोध ग्राम , ज़िला गढ़चिरोली (महाराष्ट्र) 442 605

सरोकार

शिक्षा में सुमदाय की भागीदारी के मायने

हृदय कांत दीवान

शिक्षा में समुदाय की भागीदारी के बारे में काफ़ी बातें हो रही हैं। ऐसा माना जाने लगा है कि स्कूल का समाज से एकतरफ़ा रिश्ता नहीं हो सकता। स्कूल में समुदाय की भागीदारी होनी चाहिए, यह विचार समय–समय पर सामने आता रहा है, किन्तु जब से हमने सबके लिए शिक्षा की बात करना शुरू की है, इसके ऊपर ज़्यादा ध्यान दिया जाने लगा है। पिछले दो दशकों में राष्ट्रीय व राज्य सरकारों की नीतियों व कार्य योजनाओं में इसको काफ़ी स्थान मिलने लगा है। समुदाय की भागीदारी निश्चित करने के लिए कई तरह के ढांचों और समितियों की चर्चाएं होती रही हैं। इन अलग–अलग प्रकार के ढांचों का कई बार उपयोग किया जा चुका है और इसके कई अध्ययन भी हुए हैं। इन सभी ढांचों में क्रियान्वयन के अलग–अलग आयामों को बदल–बदलकर देखा गया है और यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है कि स्कूल में समुदाय की भागीदारी बढ़े।

इस संदर्भ में यह सोचना आवश्यक है कि स्कूल में समुदाय की भागीदारी को किस परिप्रेक्ष्य से ज़रूरी माना जा रहा है? आज की परिस्थिति में हम किस तरह की अपेक्षा कर सकते हैं? साथ ही यह समझना भी ज़रूरी है कि समुदाय से हम किसकी भागीदारी की बात कर रहे हैं और किस तरह की भागीदारी की हम अपेक्षा करते हैं? दरअसल अभी तक जो प्रयास किए गए हैं उनका ज़ोर अलग–अलग पहलुओं पर रहा है।

कैसी–कैसी भागीदारी?

अगर हम स्कूल में समुदाय की भागीदारी की संभावनाओं को तलाशें तो इनकी अलग–अलग श्रेणियां देखने को मिलती हैं। इनको मोटे तौर पर इस प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

समुदाय बनाम गड़रिया– स्कूल में समाज की भागीदारी की सबसे पहली श्रेणी वह है जिसपर सब शिक्षक बहुत बल देते हैं। यह श्रेणी उस तरह की भागीदारी की है जिसमें सिर्फ़ पालकों की भूमिका है। यह भूमिका गड़रिए की तरह बच्चे को स्कूल तक समय पर पहुंचाना और समय पर ही उसे वापस ले जाने की है। पालकों को यह सुनिश्चित करना कि बच्चा साफ़–सुथरा स्कूल आए, उसके पास सब कुछ यानेकि किताब, कॉपी, पेन आदि हों। और वह पढ़ाए गए, या न भी पढ़ाए गए पर बताए

गए पाठ को पढ़कर आए, स्कूल से मिले होमवर्क को सही–सही करके आए और जो भी बताया जाए उसे याद करके आए। इसमें ज़ोर इस बात पर है कि पालक व समुदाय को स्कूल आने की और उस पर टिप्पणी करने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। बाकी सब तो ठीक है, यदि ठीक नहीं भी है तो स्कूल उसे ठीक कर लेगा।

ज़रूरत तो यह है कि सभी माता–पिता बच्चों को घर पर पढ़ाएं और अगर न पढ़ाएं तो यह सुनिश्चित कर लें कि बच्चे सारा का सारा कार्य करके ही स्कूल आएं। यह एक बड़ी ज़िम्मेदारी है जो प्राइवेट स्कूल जानेवाले बच्चों के माता–पिता बख़ूबी निभाते हैं। और अगर नहीं निभा पाते हैं तो किसी ट्यूटर को रखकर काम चलाते हैं। जो माता–पिता इन दोनों को करने में अक्षम हैं और जिनमें से अधिकतर के बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं, वे क्या करें? समुदाय की भागीदारी का यह स्वरूप शिक्षकों व स्कूली ढांचे में अधिकांश को बहुत महत्त्वपूर्ण व उपयोगी लगता है। समुदाय की स्कूल में तो कोई दख़लंदाज़ी नहीं है और घर एक तरह से स्कूल का विस्तार हो गया लगता है।

बच्चों को स्कूल भेजो अभियान में भागीदारी– समुदाय की भागीदारी के एक दूसरे स्वरूप का भी बहुत स्वागत होता है। यह स्वरूप है समुदाय के नेतृत्व द्वारा उन माता–पिता को समझा–बुझाकर बच्चों को स्कूल भेजने के लिए तैयार करना जिनके बच्चे स्कूल नहीं आते। यहां भी केन्द्रीय भावना यही है कि "स्कूल के अंदर न झांकें, वह तो हम ठीक से चला लेंगे।" चूंकि सरकार की ओर से आवश्यक है कि बच्चे बड़ी संख्या में भर्ती हों और स्कूल आएं, इसलिए समुदाय इस कार्य में मदद भर कर दे। समुदाय के कुछ सदस्यों के प्रभावी होने के बावजूद स्कूल और शिक्षक अपने कार्यों में उनका कोई संभव योगदान नहीं पहचानते।

समुदाय बनाम स्कूल के रखवाले– स्कूल में समुदाय की भागीदारी का इसी प्रकार का एक और रूप है। वह रूप है, समितियों द्वारा शाला के मरम्मत व नए निर्माण के ख़र्चों की देख–रेख करना। इसके भी कई रूप और पहलू हैं। इस प्रकार की भागीदारी को कई शासकीय नियमावलियां आवश्यक मानती हैं। इस काम को करने के लिए कई प्रशिक्षण भी दिए जाते हैं और यह भी ध्यान रखा जाता है कि उनके दस्तख़त कुछ जगह हों। इससे स्कूल के काम में थोड़ी–बहुत दख़ल आई है। अगर हम इस व्यवस्था की विकृतियों को अलग कर दें तो इससे कई मायनों में फ़ायदा भी होगा। स्कूल में बनी समितियों व पालक संघों से यही अपेक्षा होती है कि वे बच्चों को स्कूल भेजने में मदद करें और निर्माण व मरम्मत के कार्य में योगदान दें। इन सब कार्यों के लिए सरकारी योजनाओं में पैसा रहने से पहले यह अपेक्षा थी कि समुदाय स्कूल के ढांचे में योगदान देगा और यह समुदाय के लोगों के

लिए भी संभव था।

समुदाय बनाम विशेषज्ञ– पिछले दो दशकों से समुदाय की अन्य प्रकार की भूमिका के बारे में भी पुनः चर्चा हो रही है। इसकी शुरूआत बुनियादी शिक्षा में शामिल सिद्धांतों से उभरी है। हालांकि समुदाय की इस प्रकार की भागीदारी के और भी अन्य कारण हैं। यह समझा जाने लगा है कि बच्चों को पढ़ाए जानेवाले बहुत से हिस्से उनके जीवन के अनुभव से जुड़े हों। इनके बारे में उन्हें बताना आसान होगा अगर समुदाय में उन कार्यों को कर रहे (उन व्यवसायों में शामिल) व्यक्ति स्कूल में आकर उनसे बातचीत करें। जीवन के अनुभवों से ओत–प्रोत ज्ञान बच्चों को तब उपलब्ध हो सकता है जब समुदाय में विभिन्न व्यवसाय या कार्य कर रहे व्यक्ति स्कूल आएं। कई स्कूली कार्यक्रमों में यह कल्पना भी थी कि बच्चे कक्षा व स्कूल से बाहर जाएंगे और समुदाय के अलग–अलग तरह के विशेषज्ञों से ज्ञान प्राप्त करेंगे।

स्कूल में समुदाय का दर्जा

इन सब में और भागीदारी के उदाहरणों में समाज को स्कूल द्वारा दिए गए सम्मान के बारे में सोचना होगा। हाल के वर्षों में समुदाय को ज्ञान का उपयोगी स्रोत तो माना गया परन्तु अधिकांश स्थितियों में उनकी भूमिका सिर्फ़ एक अथवा दो अन्तःक्रिया तक ही थी और उन्हें शिक्षक के रूप में भी नहीं देखा गया। इस पूरी प्रक्रिया में भी स्कूल और समुदाय के लोगों का रिश्ता ग़ैरबराबरी का था और उनका स्कूल में दोयम दर्जा था। समुदाय को जब स्कूल के शिक्षकों के आने–जाने व उनके कार्य को देखने का ज़िम्मा भी मिला तब भी शिक्षक व शिक्षा के ढांचे ने ज्ञान व स्कूल के दृष्टिकोण में समुदाय की भूमिका को बहुत कम माना। यही नहीं समुदाय भी यही मानता है कि उसकी भूमिका सीमित है। एक मायने में यह भी कहा जा सकता है कि चूंकि शिक्षक ने महाविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की है और अधिकांश ने पढ़ाने–लिखाने के लिए प्रशिक्षण भी लिया है, इसलिए उनके कार्य में हर एक को दख़ल देने की इजाज़त नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि हर एक की स्कूल के कार्य की समझ अलग–अलग है। इस बात को मानते हुए भी यह कहना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि समुदाय को भी अपने बच्चों की शिक्षा की ज़रूरतों का गहरा अहसास है। वह शिक्षा के उद्देश्य व गुणवत्ता को अपने आधारों व दृष्टि से समझते–परखते हैं। इस सबकी शाला में झलक कैसे मिले?

समुदाय का संभव योगदान

हर समुदाय की अपनी संस्कृति, अपना नज़रिया, आत्मगौरव व स्वाभिमान है। समुदाय और ख़ासकर माता–पिता बच्चों के बारे में काफ़ी कुछ जानते हैं। स्कूल व शिक्षक न सिर्फ़ इसके प्रति अनभिज्ञ हैं, बल्कि वे कोई कसर नहीं छोड़ते, समुदाय के लोगों

के स्वाभिमान को जाने–अनजाने ठेस पहुंचाने की और उन्हें यह बताने की कि वे अपने बच्चों की मदद नहीं कर रहे हैं और उनके बच्चे किसी न किसी हद तक अधूरे हैं। उनमें ज्ञान की, समझ की व सीखने की क्षमता की कमी है। यही नहीं उनके व्यवहार में से बहुत से समुदायों के प्रति गहरा अनादर झलकता है।

सवाल यह है कि क्या इस नज़रिए को बदला जा सकता है? क्या स्कूल बच्चों, उनके माता–पिता, उनके समुदाय, भाषा, संस्कार, मूल्यों, रीति–रिवाज़ों आदि को समझना व उनकी इज़्ज़त करना सीख सकते हैं? क्या स्कूल समुदाय के साथ बराबरी का संवाद स्थापित कर सकते हैं? क्या वह बच्चों के न सीखने को, बच्चों व उनके माता–पिता (व समुदाय) की असफलता को स्थापित करने का प्रयास बंद कर सकते हैं? जब यह बदलाव होगा तभी समुदाय के क़दम ज़्यादा उपयोगी भागीदारी की तरफ़ बढ़ सकेंगे।

समुदाय की सार्थक भागीदारी

समुदाय की भूमिका तभी सार्थक होगी जब यह अपेक्षा हो कि समुदाय के लोग स्कूल में भागीदारी कर सकते हैं। और समुदाय की सार्थक भागीदारी स्कूल के शिक्षकों के ऊपर ताक़त व उनकी मॉनिटरिंग के अधिकार दे देने से नहीं होगी। समुदाय की वास्तविक भागीदारी तभी हो सकती है, जब स्कूल में जो हो रहा है उसपर समुदाय राय व्यक्त कर सके व शिक्षकों के साथ संवाद कर सके। शिक्षा के ढांचे को पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या में भी यह गुंजाइश रखनी होगी कि समुदाय व शिक्षक उसे उपयोगी ढंग से समझ सकें और स्थिति के अनुसार इस्तेमाल कर सकें। स्कूल के हर हिस्से और हर पहलू में उनकी भागीदारी की जगह और मांग होनी चाहिए। स्कूल उनकी समझ, उनके ज्ञान और उनकी संस्कृति की इज़्ज़त करें व उन्हें बराबरी का दर्जा दें।

समुदाय, ज्ञान व स्कूल

हमारे देश के स्कूल व शिक्षा तंत्र ने माना है कि उनकी भूमिका लोगों तक खुले विचार पहुंचाना व रूढ़िवाद को तोड़ने की है। यह तो अच्छी बात है, पर इसमें भी एक समस्या है। स्कूल यह भी मानता है कि ग़ैर पढ़े–लिखे लोग अज्ञानी व अशिक्षित हैं और हमारा काम उन्हें शिक्षा देना है। शिक्षा की भूमिका क्या हो सकती है और क्या होनी चाहिए इसमें मूल्यों और दृष्टिकोण का एक बड़ा पुट है। किन्तु हमें यह भ्रम नहीं पालना चाहिए कि हम लोगों को अज्ञान के अंधेरे में से निकालकर सही ज्ञान की ओर ले जा रहे हैं। उनके ज्ञान को समझना, जगह देना और उसकी इज़्ज़त करना ज़रूरी है।

स्कूल जो कि सरकार का एक हिस्सा है और वह भी ज्ञान व शिक्षा से संबन्धित हिस्सा है, उसमें दख़ल देने की सोचना उनके लिए मुश्किल है। इसीलिए समुदाय की भागीदारी को अर्थपूर्ण बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि इन संबन्धों और इनकी बुनियाद में भी, हमारे मन में छिपे विचारों को बदला जाए। हम यह पहचान पाएं कि समुदाय शिक्षा को कुछ सिखा पाएगा और सीखने में बच्चों की मदद कर पाएगा।

संक्षेप में समुदाय की सच्ची भागीदारी तभी हो सकती है जब स्कूल के शिक्षकों, शिक्षा तंत्र के प्राध्यापकों व अधिकारियों के मन में समुदाय, उसकी राय व उसके ज्ञान की इज़्ज़त हो और वे उसे समझ पाएं व स्कूल में उनकी भूमिका को परिभाषित कर पाएं। शिक्षा जगत् को यह देखना होगा कि कौन, कहां, और कैसे स्कूल की मदद कर सकते हैं। समुदाय की भागीदारी बच्चों को स्कूल भेजने और स्कूल के ढांचे को बनाए रखने तक सीमित नहीं होनी चाहिए।

हृदय कांत दीवान, विद्या भवन सोसायटी, फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग, उदयपुर।

शिक्षक प्रशिक्षण में एक कोशिश

कोकिला पारिख

शिक्षा का मूल मक़सद सामाजिक सरोकार पैदा करना होना चाहिए। गूजरात विद्यापीठ ने बुनियादी शिक्षा में सामाजिक सरोकार के लिए सार्थक प्रयास किया है और अध्यापक के नाते कोकिला पारिख इस यज्ञ कार्य में जुड़ीं। शिक्षक प्रशिक्षण का मतलब यह नहीं कि चारदीवारी में हम शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को विषय का प्रशिक्षण भर दे दें। उन्होंने विद्यार्थियों के साथ कई गांवों का दौरा किया। इसका ब्यौरा इस लेख में शिक्षक–प्रशिक्षण के साथ जोड़कर प्रस्तुत कर रही हैं।

गूजरात विद्यापीठ ने अपने उद्देश्यों में ग्रामभिमुख अभिगम को पसंद किया है। शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में बुनियादी कक्षा के सभी तत्त्वों को जोड़ा है। विद्यापीठ अपना धन और मानव संपदा का उपयोग गांवों की राष्ट्रपोषक शिक्षा के प्रसार–प्रचार जैसे विशिष्ट लक्ष्यों के लिए कर रही है। गुजरात में बुनियादी शिक्षा की गंगोत्री गूजरात विद्यापीठ है और ग्राम विद्यापीठ बुनियादी शिक्षा के झरने हैं। बुनियादी शिक्षा के जनक गांधीजी ने कहा है कि– ''विषयों को पढ़ाना ही शिक्षा नहीं है, वैसे केवल क्रियाओं को सिखाना या करवाना शिक्षा नहीं है। इसके लिए ज्ञान और कर्म आवश्यक है।'' बुनियादी शिक्षा का लक्ष्य नए समाज की रचना जिसमें श्रमजीवी और बुद्धिजीवी का भेद मिटे और समाज एवं शिक्षित वर्ग एकरूप हों, समाजसेवा की भावना हो। महात्मा गांधी ने बुनियादी तालीम को चेतना, प्रकाश व मुक्तिदाता की शिक्षा कहा है। बुनियादी शाला बनाने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण में बुनियादी सिद्धान्तों को बुन लेना आवश्यक है, इसे विद्यापीठ में ध्यान में रखा गया है। किसी भी प्रशिक्षण संस्था का सामुदायिक तथा सामाजिक जीवन उसके वातावरण तथा कार्यों को अत्यधिक प्रभावित करता है। प्रशिक्षण संस्थाएं केवल ज्ञान–वितरण की दुकानें या शिक्षण विधियों के कारख़ाने नहीं हैं। वे छात्र–अध्यापकों तथा संस्था के प्राचार्यों का सहयोगी समुदाय हैं। जहां सभी मिल–जुलकर जीवन जीने तथा अच्छे मानवों के रूप में विकसित होते हैं।

गूजरात विद्यापीठ के शिक्षक प्रशिक्षण में स्वस्थ सामुदायिक और सामाजिक जीवन का महत्त्व अत्यधिक है। शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में क्रियात्मक पहलू को समाज के साथ जोड़ा गया है। प्रशिक्षण के साथ बुनियादी तत्त्वों का संयोग होता है तब सोने में सुहागा जैसी बात होती है।

अतः जब हमारी शिक्षा संस्थाएं बुनियादी में परिवर्तित एवं विकसित हो रही हैं तब तो स्वस्थ तथा अच्छा सामुदायिक एवं सामाजिक जीवन इनका अभिन्न अंग बनना चाहिए। इसके साथ–साथ प्रशिक्षण संस्थाएं इन अंगों को मजबूत बनाएं, ऐसी अपेक्षा समाज रखता है।

शिक्षक एक बुद्धिजीवी व्यक्तित्व है। इस रूप में सामाजिक दायित्वों का निर्वाह, आवश्यक समालोचना एवं निर्णय लेना उसका कर्तव्य है। वह इन कर्तव्यों का पालन कर सके इसके लिए सेवापूर्ण अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में उसे ऐसे अनुभव प्रदान किए जाते हैं, जो दक्षताओं में बढ़ोत्तरी करते हैं। साथ ही अभीष्ट विकास में सहायक हैं। वर्तमान समाज की जटिलताओं एवं परिवर्तनों के बीच जन–सामान्य आकांक्षाओं को जाननेवाले विज्ञान एवं तकनीकी के इस युग में बालक के महत्त्व को समझनेवाले शिक्षकों को विशेष रूप से शिक्षित करने की आवश्यकता है। वस्तुतः शिक्षक की गुणवत्ता शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की गुणवत्ता पर निर्भर है।

शिक्षक आयोग (1964–66) के अनुसार शिक्षक, शिक्षा एवं वास्तविक विद्यालयी अभ्यास के बीच की दूरी को पाटना आवश्यक है। अर्थात् शिक्षा के सैद्धान्तिक पक्ष और क्रियात्मक के बीच की दूरी आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व अनुभव की गई, वह आज भी बरक़रार है। परिणामस्वरूप इस शिक्षा से जो शिक्षक तैयार किए जा रहे हैं, वे वास्तविक क्षेत्र में वांछित प्रभाव छोड़ जाने में असफल प्रतीत हो रहे हैं। संभवतः अध्यापक द्वारा दी जानेवाली विषयवस्तु और जिस पद्धति से शिक्षा दे रहे हैं वह दोषपूर्ण है। अतः इस कार्यक्रम को लचीला बनाने की अवश्यकता महसूस होती है ।

गूजरात विद्यापीठ ने शिक्षक–प्रशिक्षण में शिक्षा को समाज के परिवेश से जोड़ने का और शिक्षा में समाज की हिस्सेदारी का कार्य किया है। जीवन को बेहतर और उन्नत बनाने के लिए शिक्षा को समाज के साथ जोड़ा है। शिक्षक प्रशिक्षण के सभी पहलुओं को तो विद्यापीठ ने पहले से जोड़ा था मगर ग्राम जीवन यात्रा का अनुभव इस बार क्या है जो इसके साथ जोड़ा है।

समाज में कुदरती आपत्तियों जैसे कि भूकंप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा सुनामी के समय विद्यापीठ के प्रशिक्षार्थी समाज सेवा के कार्यों को प्राथमिकता देते हैं। भूकंप के समय गुजरात के कच्छ में प्रशिक्षार्थियों ने बहुत सेवा की थी। मलबा हटाने से लेकर फूड पैकेट उपलब्ध कराने, पीने का शुद्ध पानी तथा सभी प्रकार की सेवा में थे। सुनामी के समय कन्याकुमारी के नज़दीकी स्थलों में एक मास तक रहकर हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय (बी.एड.) के चुनिंदा प्रशिक्षार्थियों ने सेवा कार्य किया था। उस समय गूजरात विद्यापीठ के विविध विभागों के 100 से ज़्यादा छात्र सेवा में सम्मिलित थे। मलबा हटाने के साथ–साथ वहां लोगों को धीरज देना, नए मकान बनाने में मदद करना था। कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्र में भूकम्प के बाद अध्यापकों तथा प्रशिक्षार्थियों ने मलबा हटाने के साथ–साथ उनके नए मकान बनाने में श्रमकार्य किया था। पीड़ितों का मनोबल बढ़ाने तथा उत्तम समाज सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया था। अपने जीवन में भी वे इससे कुछ सीखे हैं।

गूजरात विद्यापीठ में प्रशिक्षार्थियों के लिए अनिवार्य छात्रावास, खादी पहनना, कताई करना, साल भर में आसन बुनना, शैक्षिक प्रवास, अनाज सफ़ाई, भोजनघर में मदद करना, जैसे कि सब्ज़ी काटना, रोटी बेलना, भोजन परोसना, बरतन की ख़ुद सफ़ाई करना, बाथरूम सफ़ाई, पाखाने की सफाई आदि कार्य करते हैं। इस प्रकार प्रशिक्षार्थियों को स्वावलम्बन के पाठ सीखने को मिलते हैं।

गूजरात विद्यापीठ ने शिक्षक–प्रशिक्षण में मातृभाषा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। सिर्फ़ हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय में गुजराती भाषा द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है और हिन्दी के शिक्षक तैयार किए जाते हैं।

नई तालीम के सिद्धान्तों में उद्योग द्वारा शिक्षा को

महत्त्व दिया गया है। सिर्फ़ शाब्दिक शिक्षा को ही सर्वांगीण विकास नहीं कहते हैं। विविध कौशलों के विकास के लिए उद्योग की शिक्षा दी जाती है। अम्बर चरखा और यरवडा चक्र द्वारा कताई होती है। एक वर्ष के दरम्यान हर प्रशिक्षार्थी पांच आसन बुनता है। इस प्रकार प्रशिक्षणार्थी क्रियाशीलता, सहभागिता, सहयोग एवम् आर्थिक उपार्जन के पाठ सीखते हैं। प्रशिक्षार्थियों को जीवन द्वारा जीवन के लिए शिक्षा देने का प्रयास होता है। प्राकृतिक, सामाजिक और औद्योगिक पर्यावरण को ध्यान में रखकर शिक्षा में अनुबन्ध किया जाता है।

छात्रावास में प्रातः प्रार्थना और सायं प्रार्थना होती है। महाविद्यालयों में दोपहर 11.00 बजे समूह प्रार्थना होती है। शिक्षक–प्रशिक्षण विभाग के शिक्षण महाविद्यालय और हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय में प्रार्थना सम्मेलन वैविध्यपूर्ण होता है। प्रार्थना सभा में प्रार्थना, भजन, गीत, समाचार पठन, पुस्तक परिचय, जानकारी, सुविचार आदि प्रशिक्षार्थियों के द्वारा प्रस्तुत होता है। हर एक प्रशिक्षार्थी प्रार्थना सम्मेलन का संचालन करने का प्रशिक्षण प्राप्त करता है। प्रशिक्षार्थी प्रायोगिक पाठ के लिए शहर के ग्राम शिविर और इन्टर्नशीप के दरम्यान बुनियादी विद्यालयों में जाते हैं तब प्रार्थना सम्मेलन को रसप्रद बनाते हैं। साथ ही गांधीवादी विचारों का प्रसार–प्रचार करते हैं।

आश्रमशाालाओं और उत्तर बुनियादी विद्यालयों में 10–10 प्रशिक्षार्थियों में लगनेवाले शिविर में एक मार्गदर्शक अध्यापक साथ जाते हैं। ग्राम शिविर में 15 दिनों का प्रशिक्षण होता है। प्रशिक्षार्थी वहां पाठ (Lesson) देते हैं। इसके अलावा बहुत सी अभ्यासिक और सहअभ्यासिक प्रवृत्तियां करवाते हैं।

कक्षाखंड में अध्यापन के अलावा निबन्ध प्रतियोगिता, वक्तव्य प्रतियोगिता, चित्र, सुलेखन, अंताक्षरी तथा सामान्य ज्ञान जैसी प्रतियोगिताओं का आयोजन करते हैं। इसके अलावा सफ़ाई, खेलकूद, ग्राम संपर्क का आयोजन होता है। गांधी प्रदर्शनी करते हैं। साक्षरता और शिक्षा की जागृति के लिए भी प्रयास होते हैं।

तीन–तीन प्रशिक्षार्थी इन्टर्नशीप में गुजरात में विविध बुनियादी विद्यालयों में 21 दिनों के लिए जाते हैं। जो कार्य ग्राम शिविर में करते हैं उसी प्रकार इन्टर्नशीप में विद्यालय के प्राचार्य की निगरानी में करते हैं।

सभी प्रशिक्षण संस्थाओं से अलग प्रकार का प्रशिक्षण विद्यापीठ के दोनों महाविद्यालयों के प्रशिक्षार्थी प्राप्त करते हैं। सन् 2007 में प्रशिक्षण में उत्कृष्टता देने वाला एक और कार्यक्रम हुआ। पांच दिनों की ग्राम जीवन यात्रा हुई। इस ग्राम जीवन यात्रा में 2 अक्टूबर गांधी जयंती को मद्देनज़र रखकर रचनात्मक कार्यों के संदर्भ में गूजरात विद्यापीठ के सभी विभागों के छात्रों को जोड़ा गया। अहमदाबाद और गांधीनगर दो ज़िलों के कुल 700 गांवों में 183 दलों में (हर एक दल में 8 छात्र) 1528 छात्रों को समाविष्ट किया गया। हर दल में मार्गदर्शक अध्यापक था। हर दल ने चार गांवों का साक्षात्कार किया। पदयात्रा में स्वच्छता, साक्षरता, व्यसन मुक्ति और ग्राम सभा को महत्त्व दिया गया था।

मैं आठ प्रशिक्षार्थियों को लेकर वीरमगाम तहसील के दोलतपुरा, काकरावाड़ी, वाणी और रहमलपुरा गांव में गई थी। प्रातः 5.30 से लेकर रात 11.00 बजे तक का हमारा दैनिक कार्यक्रम तय था। चारों गांव छोटे–छोटे थे। इनकी आबादी क्रमशः 600, 900, 2259 और 1281 की थी।

इस ग्राम जीवन यात्रा के दरम्यान चारों गांवों में हमने प्राथमिक शाला, माध्यमिक शाला, ग्राम पंचायत, दूध मंडली, युवा मंडल, महिला मंडल, भजन मंडल,

गांव पंचायत के सदस्यों और गांव के वरिष्ठ व्यक्तियों का सहयोग लिया। इन लोगों के आधार पर गांव की परिस्थिति का ब्यौरा पाया। इसके बाद लोगों में जागृति लाने का कार्य हमने शुरू किया।

चारों गांवों में सिर्फ दोलतपुरा गांव आदर्श था। इसे निर्मल गांव का राष्ट्रपति पुरस्कार 2007 में मिला था। इस गांव से हमें बहुत कुछ सीखने को मिला। गांव में अच्छी एकता थी। हमारी शुरूआत गांव की प्राथमिक शाला से हुई। शाला के प्राचार्य, शिक्षक और बच्चे स्वच्छता के संदर्भ में जागृत थे। सरपंच और उपसरपंच के पद पर चार में से दो गांवों में महिलाएं थीं, मगर सिर्फ़ कहने के लिए क्योंकि सभी कार्यभार उनके पतिदेवों के अधीन था। तीन गांवों में समरस पंचायत थी। शालाओं में चारों मुद्दे के संदर्भ में वक्तव्य दिया। स्वच्छता, सुन्दरता, साफ़–सुथरापन और सुघड़ता की बात की। सभी गांवों में विद्यालयों के सहयोग से रैली निकाली गई। रैली में स्वच्छता, साक्षरता और व्यसन मुक्ति के नारे लगाए गए। चारों में से तीन गांवों में स्वच्छता का अभाव था। चारों गांवों का प्रधान व्यवसाय कृषि और पशुपालन था।

दोपहर को गांव के बीच में गांधीजी के संदर्भ में प्रदर्शनी लगाते थे। प्रदर्शनी में ग्राम जीवन में पांच बजे सफ़ाई का आयोजन किया जाता था। हमारी भोजन व्यवस्था गांव में अलग–अलग घरों में दो–दो व्यक्तियों की हुई थी। ऐसा लगा कि *''सचमुच इकट्ठा करके खाएं वह शहरी संस्कृति और इकट्ठे मिलकर खाएं वह ग्राम्य संस्कृति।''* चारों गांवों में लोगों के घर में परिवार की तरह भोजन किया और गांवों की परिस्थिति का सर्वे किया।

चारों गांवों में देखा कि शिक्षा का स्तर निम्न था। एक ही गांव में माध्यमिक शाला थी। रात 8.00 से 11.00 बजे तक हमने चारों गांवों में स्वच्छता, साक्षरता, व्यसन मुक्ति और ग्राम सभा के संदर्भ में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम किया। सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने के लिए गांव के सभी लोग आते थे। हमारे लिए यह सबसे अच्छा मौक़ा था। कार्यक्रम में गांव के वरिष्ठ लोगों को भी आमंत्रित किया जाता था। कार्यक्रम के प्रथम चरण में मैंने गांव के लोगों को चारों मुद्दों को समाविष्ट करके, लोग समझ सकें ऐसा प्रवचन दिया। गूजरात विद्यापीठ का ग्राम जीवन यात्रा का उद्देश्य समझाया। हमने यह भी बताया कि हम कोई राजकीय विभाग की ओर से नहीं आए। प्रार्थना, भजन, गांधी गीत, नाटक, मिमीक्री, साक्षरता गीत, प्रभात फेरी आदि कार्यक्रमों के ज़रिए हमारा संदेश लोगों तक पहुंचाने का प्रयास सफल रहा।

हर एक गांव में पूरा एक दिन और एक रात का कार्यक्रम होता था। इसकी वजह से हर एक गांव में चारों मुद्दों को न्याय मिलता था। प्रशिक्षार्थियों ने ग्राम्य संस्कृति को, गांव के परिवेश को, गांवों की कमियों को बहुत अच्छी तरह से जाना, समझा।

सामाजिक पर्यावरण के साथ प्रशिक्षार्थियों को जोड़कर जो प्रशिक्षण मिला उनके जीवन में यह अमूल्य समय के रूप में संस्मरण रहेगा। इस प्रकार नई तालीम की शिक्षा शिक्षक–प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक कोशिश के रूप में सफल रही। गांवों के सकारात्मक अभिगम में प्रशिक्षार्थियों को मूल्य शिक्षण प्राप्त हुआ।

कोकिला पारिख, हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय, गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद– 380014

बच्चे, भाषा और शिक्षा

विचार एवं चित्र : के.आर. शर्मा

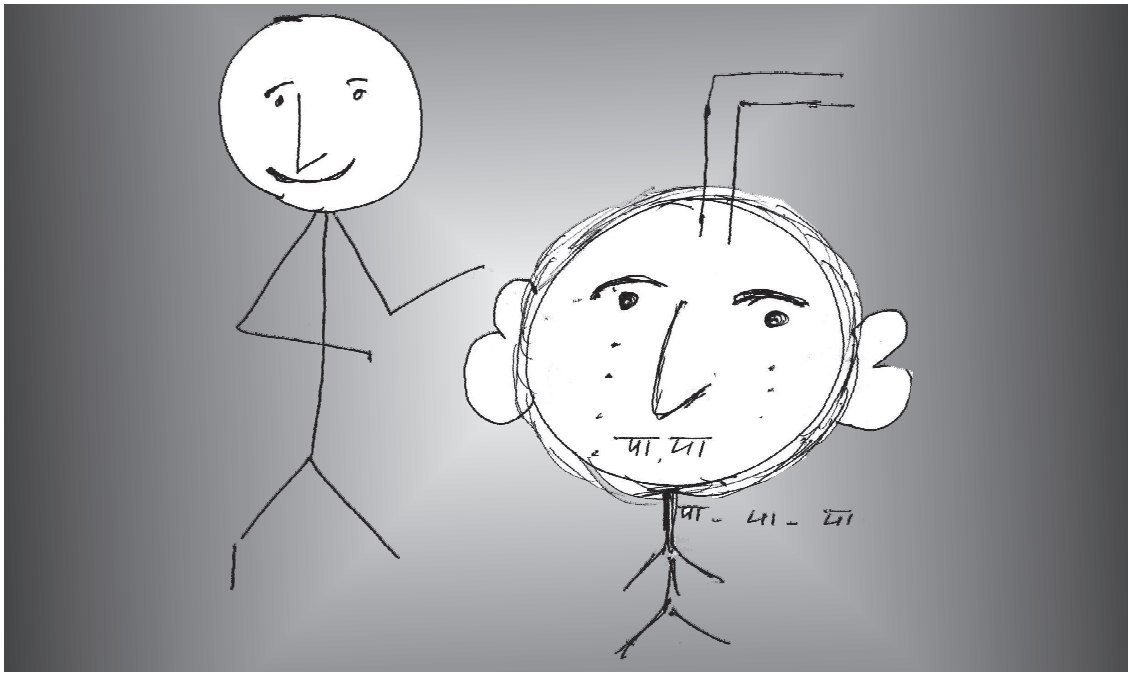

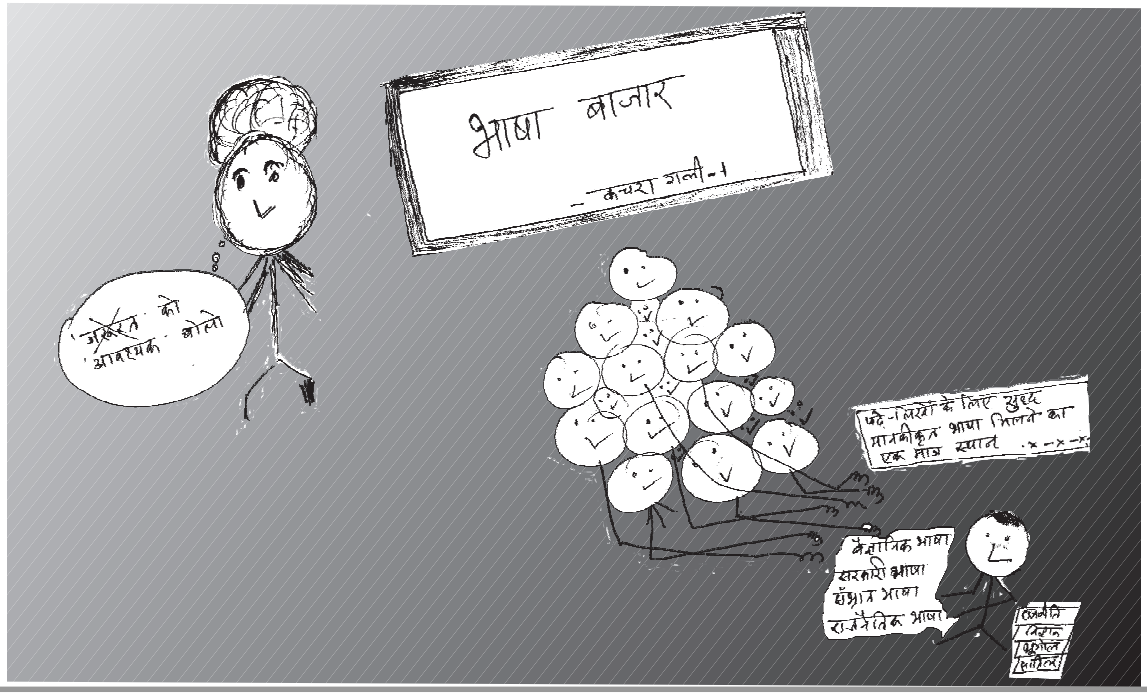

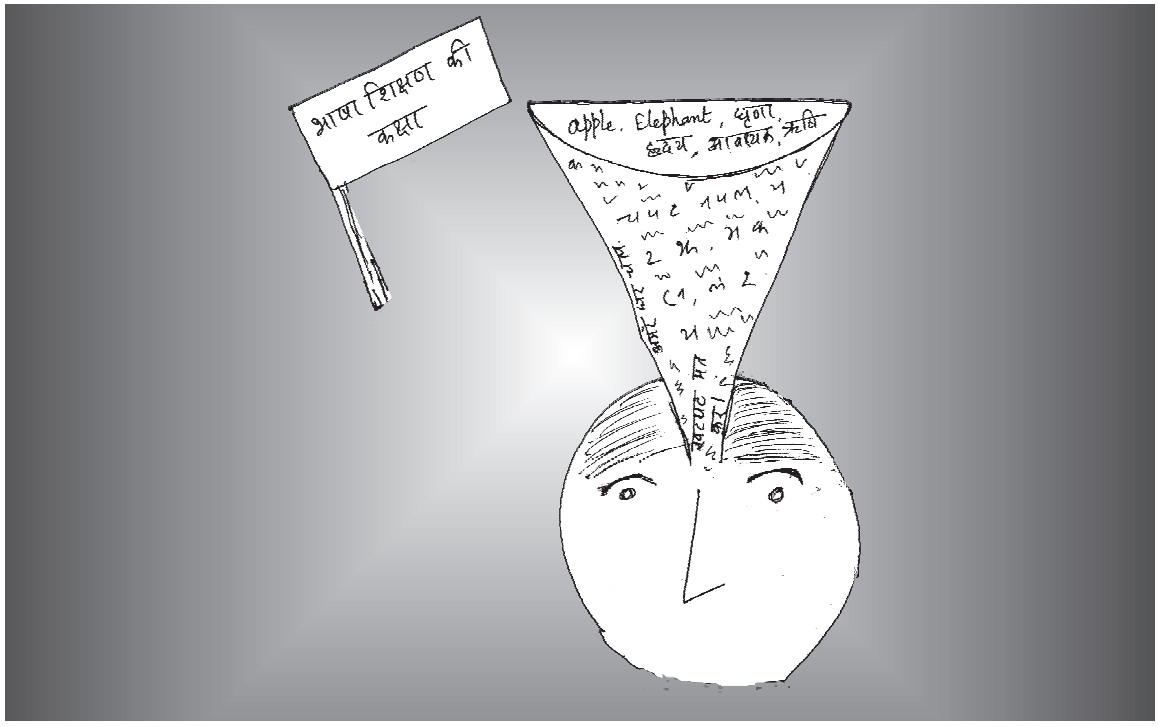

भाषा शिक्षण की कक्षा
Apple, Elephant,

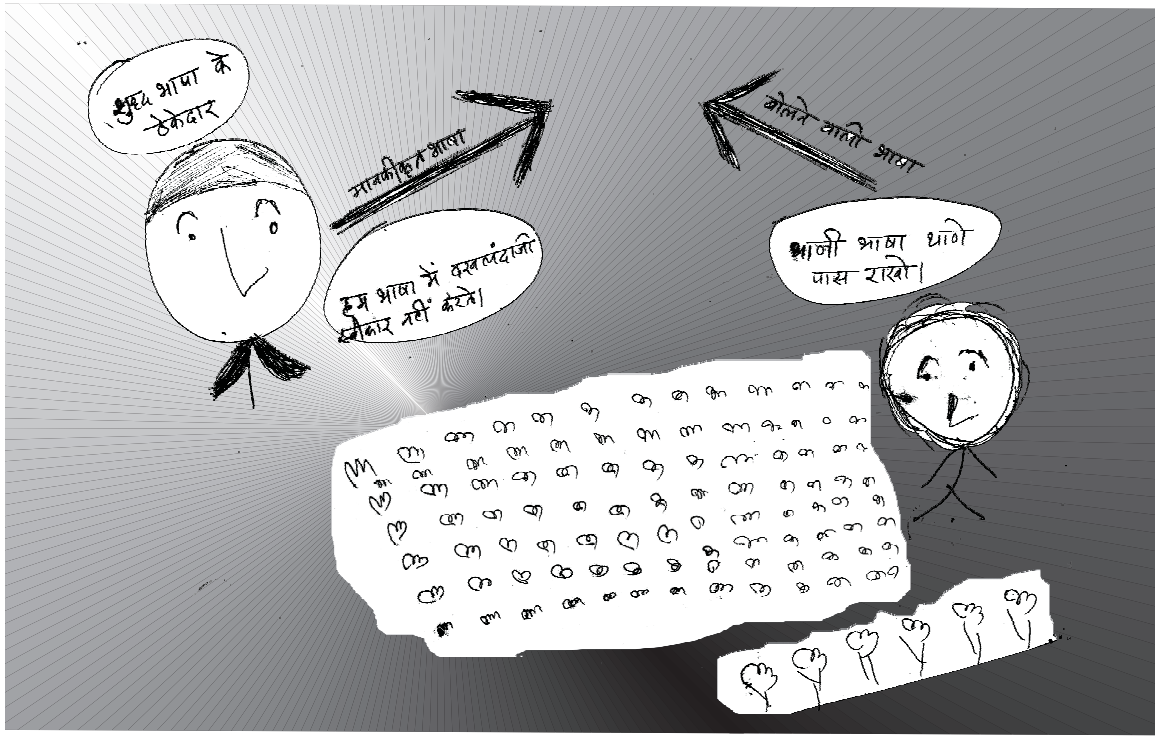

शुद्ध भाषा के ठेकेदार
मानकीकृत भाषा
बोलने वाली भाषा
हम भाषा में दखलंदाजी स्वीकार नहीं करते।

डॉ० साब...
बच्ची शब्द को 'चयद' बोलती है। कुछ ईलाज ---
आपरेशन करना पड़ेगा।

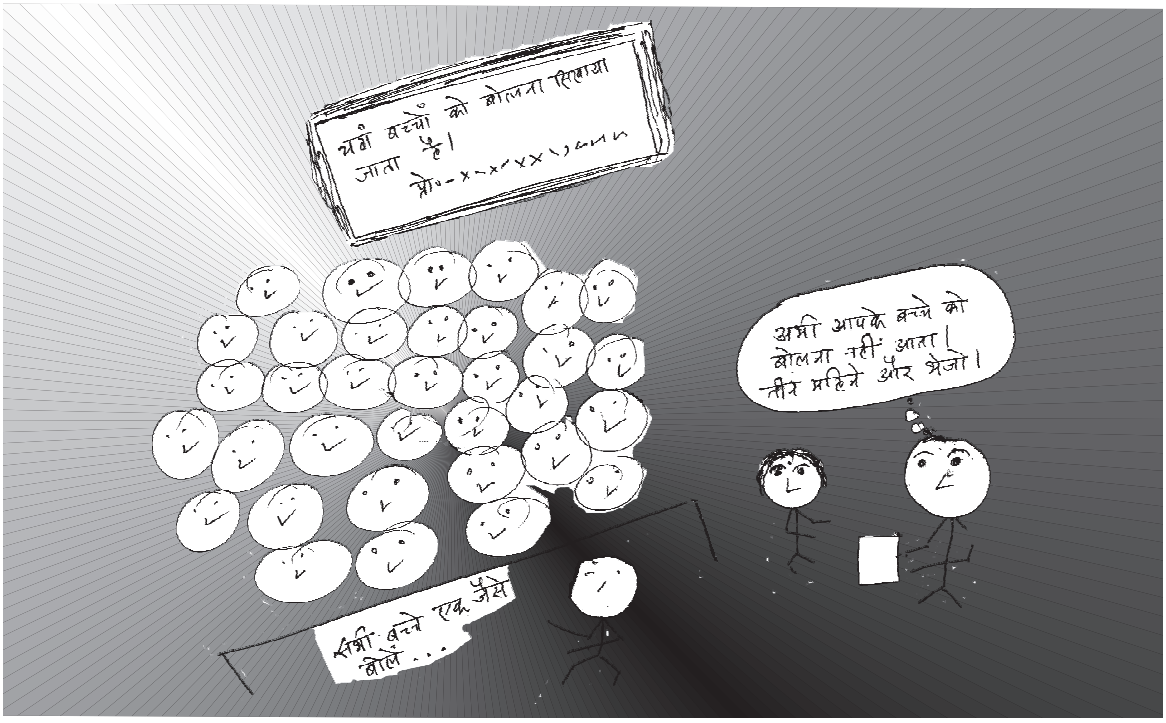

यहाँ बच्चों को बोलना सिखाया जाता है।
प्रो०-
अभी आपके बच्चे को बोलना नहीं आता। तीन महिने और भेजो।
सभी बच्चे एक जैसे बोलें...

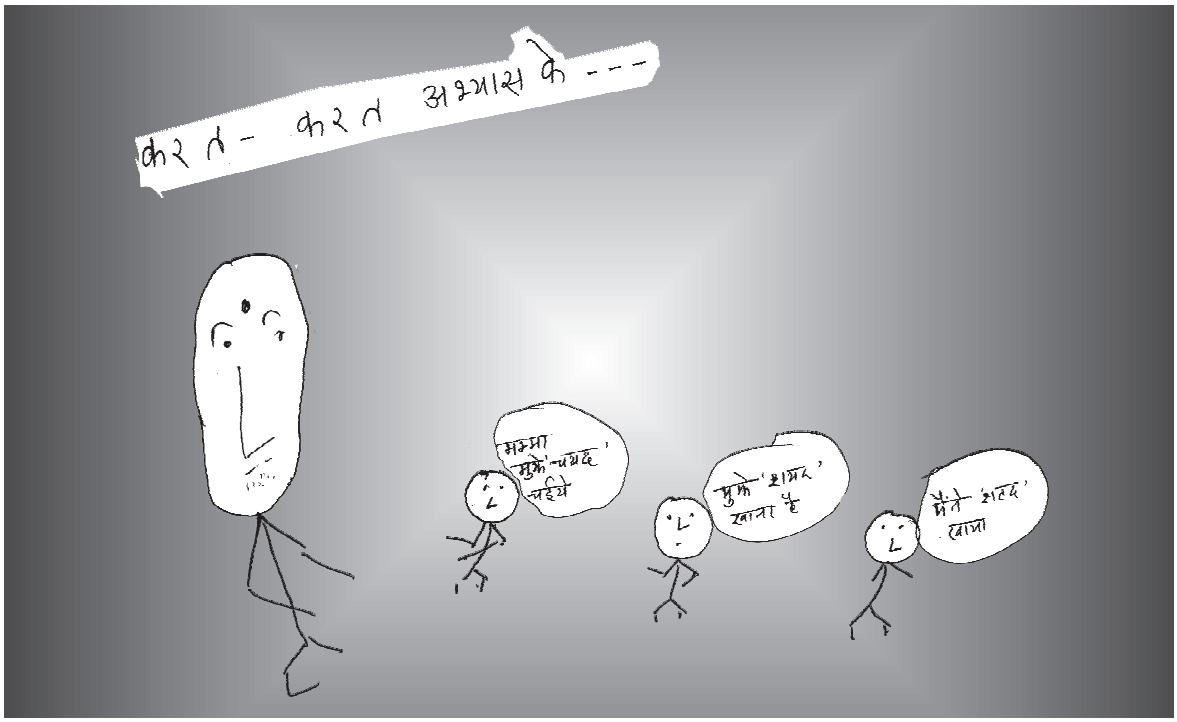

करत - करत अभ्यास के ---
मम्मा मुझे 'चयद' चईये
मुझे 'शयद' खाना है
मैंने 'शहद' खाया
बच्चे की बुद्धि तेज करा लो

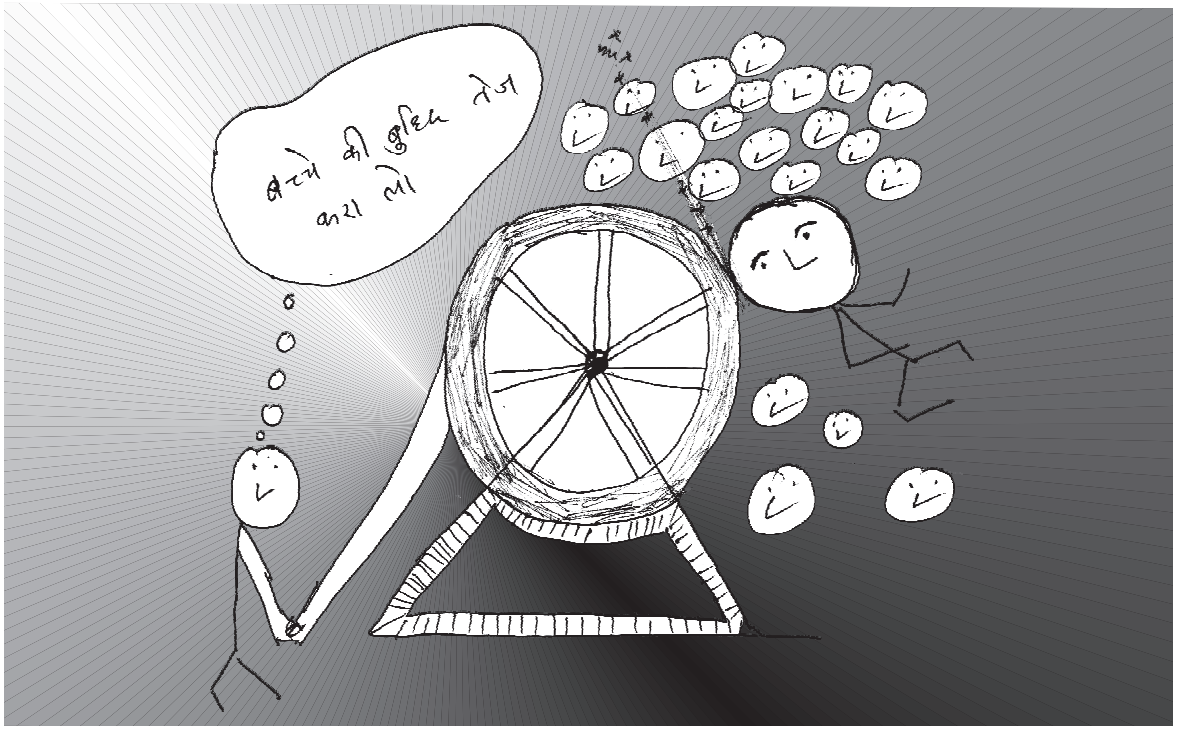

सरन काला

शब्दों की दस्त

कभी–कभी जीवन में कुछ व्यंग्यभरे शब्द हमारे नज़रिये को बदल डालते हैं। चार साल पहले मैंने जॉन होल्ट की पुस्तक पढ़ी थी जिसमें मनोविज्ञान और समाजशास्त्र के विशेषज्ञ जॉन होल्ट स्वयं यह स्वीकारते हैं कि–

''जब मैंने क्लास में ख़ुदा का लबादा उतारकर थोड़ा मनुष्य का आचरण शुरू किया तब मुझे महसूस हुआ कि अब मैं बच्चों के लिए कम हानिकारक व थोड़ा उपयोगी बन रहा हूं।'' इससे पहले अन्य अध्यापकों की तरह वह भी यही माना करते थे कि वे जो कुछ भी कर रहे हैं बच्चों के भले के लिए ही कर रहे हैं।'"

'ख़ुदा का लबादा उतारकर मनुष्य का आचरण'' इन शब्दों ने मुझे झकझोर सा दिया... क्या मैं भी अपने को ख़ुदा ही समझ रही हूं...?

मेरा भ्रम टूट सा रहा था। जॉन होल्ट के आत्मबोधात्मक अनुभूतिभरे शब्दों ने मुझे अतीत की परछाइयों में ला खड़ा किया...। आगे के शब्दों को पढ़ने की जिज्ञासा बढ़ी। मन में चल रहा था कि और क्या–क्या?

''इन बच्चों को तथ्यों के अतिरिक्त कुछ मत पढ़ाओ जीवन में अकेले तथ्यों की ही तो जरूरत पड़ती है या इनमें और कुछ आरोपित मत करो बल्कि ये जो कुछ पहले से जानते हैं उसे ही जड़ से उखाड़ कर फेंक दो,'' ये व्यंग्यात्मक लहज़े में शब्द थे चार्ल्स डिकिन्स के। इन व्यंग्योक्तियों को पढ़कर इस सोच के पीछे छुपी आवाज़ को सुनकर हमें सोचना होगा कि हमारी भूमिका शिक्षक मंच पर कैसी हो? हमारा कक्षा–कक्ष हमें प्रतिदिन अपनी कार्यविधि के नज़रिये को बदलने की दस्तक देता है कि अपने कक्ष के प्रत्येक क्षण के घटनाक्रम को गोपनीय एवं रहस्मय मत बनाओ। अपनी कार्यविधि में पारदर्शिता और खुलेपन के अहसास की ज़रूरत हमारे नज़रिये को बदलने में मदद कर सकती है। ''हम और क्या कर सकते हैं बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए'' ये शब्द हमारे व्यवहार पद्धतियों को बदलने में सदैव सहायक रह सकते हैं।

इन शब्दों, वाक्यों ने काम के प्रति हमारी सोच ही बदल दी जिससे हमने अपने कक्षा–कक्ष को एक कमरे से वर्कशॉप बना दिया, जहां हम एक राजा–प्रजा के रूप में नहीं एक प्रेरक के रूप में स्वयं भी सीखते हुए काम करने लगे। हमें शिक्षक के बजाए यदि ''अनुभवी'', ''निर्णायक'' शब्दों से सम्बोधित करोगे तो अच्छा लगेगा। केवल ''समझने'' ''जानने'' के उद्देश्यों को लेकर चलना होगा। ''विषयों'' के स्थान पर ''क्षमता'' आधारित शिक्षण को महत्त्व हमें देना है जिसमें एक नहीं कई मार्ग सीखने के बनेंगे।

पुस्तकालय की अलमारी को टटोलते हुए एक पुरानी पत्रिका हाथ लगी जिसमें '' शिक्षाक्रम में विषय शिक्षण'' पर मेरी दृष्टि गई। लिखा था आज के युग में शिक्षा का एक और उद्देश्य उभरकर सामने आया है। '' मुझे जिज्ञासा हुई यह कौनसा उद्देश्य है। पढ़ने पर पता चला भविष्य के प्रति संलग्नता आनेवाले समय की आवश्यकताओं के प्रति जागरूकता, भावी ख़तरों के प्रति सचेत होना– समयानुरूप तैयारी व योजनाबद्ध कार्यवाही आदि।

वास्तव में आज सुन्दर–सुखद भविष्य के लिए इस उद्देश्य की आवश्यकता है। शायद हमारी सोच, हमारा नज़रिया बदल जाए बच्चों के प्रति, स्कूल के प्रति, साथियों के प्रति।

स्कूल की बैठक में अक्सर ये शब्द सामने आते हैं– बस पाठ्यक्रम पूरा होनेवाला है... या पाठ्यक्रम पूरा हो चुका, पुनरावृत्ति चल रही है, अभ्यास करवाया जा रहा है...। कहीं न कहीं शिक्षाक्रम में बात घूम–फिर कर पाठ्यक्रम के इर्द–गिर्द ही रहती है।

ऐसा लगता है कि पाठ्यक्रम सुरक्षा में जीने की एक दीवार है एक तालाब के जैसे। अपनी चारदीवारी की खोल बनाए जिसके भीतर हम बैठ गए– न हमें विस्तार में प्रवेश करना है न हमें चांद तारों की यात्राएं करनी हैं...।

हमें जॉन–होल्ट जैसे एक तख़्ती लगानी होगी ''क्षमताओं को जगाओ'' क्योंकि शिक्षक की ''समृद्धि का सूत्र'' है– ''आवश्यकताओं को फैलाओ–'' क्योंकि आवश्यकताएं हमें श्रम में रत रहना सिखाती हैं, आवश्यकताएं ही हमें अपने आपको समझने का अवसर देती हैं।

एकलव्य ने जॉन होल्ट की निम्न किताबें छापी हैं–

1. बच्चे असफल क्यों होते हैं?
2- Escape from Childhood
3. The under-achiving school
4. असफल स्कूल

आप ये पुस्तकें विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर के पिटारा से प्राप्त कर सकते हैं।

जॉन होल्ट : एक नज़र में

जॉन होल्ट दुनिया के ख्यातिप्राप्त शिक्षाविद् रहे हैं। उनका जन्म न्यू यार्क में हुआ। अधिकांश लोग शिक्षक का पेशा इसलिए अपनाते हैं क्योंकि उनके पास जीवन में कोई विकल्प नहीं होता। दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जो कि अपने शौक़ और सपनों के ज़रिए अपनी आजीविका चला पाते हैं। होल्ट उन बिरले लोगों में से एक थे जिनने अपने शौक़ को पेशा बनाया। वे शायद बच्चों को इतनी संवेदना से इसलिए भी देख पाए कि वे एक शिक्षक थे।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान होल्ट अमेरिकी नौसेना में रहे। होल्ट ने युद्ध से होनेवाली तबाही देखी और त्रस्त होकर वर्ल्ड गवर्नमेंट मूवमेंट के लिए काम भी किया। 1952 में अपनी बहन के कहने पर वे रॉकी माउंटेन स्कूल कोलेरेडो, अमेरिका गए। इस स्कूल मे ंचार साल पढ़ाने के बाद होल्ट ने कुछ अन्य स्कूलों में भी पढ़ाया। वे बच्चों की हर बात को अपनी डायरी में नोट करते। 'बच्चे असफल क्यों होते हैं?' नामक पुस्तक उनकी डायरी का ही हिस्सा है।

होल्ट एक घुमक्कड़ क़िस्म के इंसान थे। वे एक संपन्न परिवार से थे। लेकिन पूरा जीवन सरल और सादगी से जिया। आधुनिक और बड़ी संस्थाओं से उनको चिढ़ थी।

होल्ट पूरी ज़िंदगी एक ऐसे स्कूल की तलाश में रहे जहां बच्चों की प्राकृतिक प्रतिभाओं को फलने–फूलने के अवसर मिलते हों। 1975 में होल्ट स्कूल में बदलाव लाने के बजाए स्कूल को बंद करो के पक्षधर हो गए। 14 दिसंबर 1985 को जॉन होल्ट का कैंसर के कारण देहांत हो गया।

सरन काला, विद्या भवन जूनियर पब्लिक स्कूल में शिक्षिका हैं।

पुस्तक समीक्षा

बचपन से पलायन

के. आर. शर्मा

बचपन से पलायन बच्चों और किशोरों के विषय में है, आधुनिक समाज में उनके स्थान, या यों कहें कि उनैके स्थान के अभाव के विषय में है। यह पुस्तक आधुनिक बाल्यावस्था की संस्था पर है। उन दृष्टिकोणों, प्रथाओं और नियमों के विषय में है जो आधुनिक जीवन में बच्चों को परिभाषित और स्थापित करते हैं, और काफ़ी हद तक यह तय करते हैं कि बच्चों के जीवन कैसे होंगे और हम, अर्थात् उनके बड़े–बुजुर्ग, उनसे कैसा व्यवहार करेंगे। मुझे लगता है कि बाल्यावस्था कई अर्थों में उन अधिकांश बच्चों के लिए बड़ी ख़राब अवस्था है जिन्हें इसके तहत जीना पड़ता है। इसे बदलना चाहिए। दरअसल यह पुस्तक बच्चों के बारे में कई सारे बुनियादी सवालों को उठाती है।

बाल्यावस्था की दुर्गति को एक तरह से हमने नियति मान लिया है। हम वयस्क बच्चों को एक खिलौने से ज़्यादा नहीं समझते हैं। दरअसल बच्चे को जन्म देना जितना आसान है उसकी परवरिश करना उतना ही चुनौतीभरा काम है। हमारे यहां बच्चों को लेकर जो योजनाएं भी चलती हैं वे भी बच्चों का कल्याण करने में सक्षम नहीं दिखतीं।

बच्चों के प्रति फ़ालतू की दया दिखाने के बजाए बच्चों की क्षमताओं का इस क़दर विकास करने की ज़रूरत है कि वे एक ज़िम्मेदार नागरिक बन सकें। साथ ही बड़ों की मानसिकता को इस तरह से बदलने की ज़रूरत है कि उनके बचपन के साथ खिलवाड़ न हो। बच्चों के क्या अधिकार हैं? उन अधिकारों को पुष्ट करें और उनको समाज के सामने रखें तो बच्चों के साथ सही मायनों में न्याय

होगा। होल्ट कहते हैं कि यदि बच्चों को कानून द्वारा समान व्यवहार का अधिकार होता... यदि वे अपने जीवन और अपने व्यवहार के लिए कानूनी तौर पर ख़ुद जिम्मेदार होते... यदि उनको यात्रा करने, घर से दूर रहने, अपना घर चुनने या बनाने

का अधिकार होता...यदि वे वह सब कुछ कर सकते जो कोई वयस्क कानूनी तौर पर कर सकता है।

कई बार ऐसा होता है कि बच्चों को सुरक्षित रखने की आड़ में उनको दीवारों से घिरे बगीचे में इस क़दर रखा जाता है जहां वे मानवीय अनुभवों की दुनिया से पूरी तरह से अछूते रह जाते हैं। बाल्यावस्था की हमारी मौजूं संस्था में भरोसा करने वाले ज़्यादातर लोग उसे दीवारों से घिरे एक बाग के रूप में देखते हैं। एक ऐसा बाग़ जहां छोटे और कमज़ोर बच्चों को बाहरी दुनिया की कठोरता से तब तक सुरक्षित रखा जाता है जब तक वे उससे निपटने के लिए बलवान और चतुर नहीं बन जाते। बाल्यावस्था को कुछ बच्चे ठीक इसी प्रकार से अनुभव करते हैं।

होल्ट कहते हैं, मेरा आशय नहीं है कि उनके बाग़ को मैं उजाड़ना चाहता हूं न ही लतियाकर वहां से बच्चों को खदेड़ना चाहता हूं। अगर उनको वह सब कुछ पसंद है तो बेशक वहां रहें। लेकिन अधिकांश बच्चे यह महसूस करते हैं कि बचपन एक बगिया नहीं एक क़ैदख़ाना है। होल्ट इशारा करते हैं कि इस बगिया को घेरनेवाली कठोर दीवार में बच्चे क़ैद होते हैं। जरूरत है कि इस दीवार में एक या चंद दरवाज़े हों जहां से जब बच्चों का दम घुटे और अपमान का अहसास हो तो वे कुछ समय के लिए बाहर निकल सकें और एक बड़े स्थान पर जीने की कोशिश करें। होल्ट तो यह भी कहते हैं कि यह ज़रूरी नहीं कि इस दुनिया के सभी बच्चों के लिए बचपन एक बुरी चीज़ है। बाल्यावस्था कई अर्थों में बच्चों के लिए बड़ी ख़राब अवस्था है।

होल्ट एक लंबे समय से इस पशोपेश में रहते हैं कि बाल्यावस्था की संस्था पर सवाल कैसे उठाएं? और सवाल उठाए जाएं भी या नहीं? लेकिन होल्ट ने सवाल उठाने के साथ ही साथ बच्चों और किशोरों के जीने के वैकल्पिक किंतु बेहतर तरीक़ों पर भी विचार किया। होल्ट कहते हैं बच्चे को हम एक ग़ुलाम या पालतू जीव के रूप में देखने के आदी हो चुके होते हैं और यह नजरिया बच्चों के लिए ख़तरनाक़ होता है। होल्ट कहते हैं बच्चों को भी वे सब अधिकार मिलने चाहिए जो कि वयस्कों को प्राप्त हैं। दरअसल अभिभावक अपनी संतान को नियंत्रण की ज़ंजीरों पर इस उम्मीद से बांधकर रखते हैं कि कहीं उनको आज़ादी देने से या हक़ देने से वे बिगड़ न जाएं। लेकिन होल्ट का मानना है कि यह बच्चों के साथ खिलवाड़ है।

होल्ट ने बच्चों और बाल्यावस्था की कई सारी समस्याओं की ओर न केवल ध्यान आकर्षित किया है बल्कि उन हरकतों का ज़िक्र करते हुए उनकी व्याख्या भी पेश करते हैं। अक्सर हम वयस्क बच्चों को प्रेम करते हुए उनको चूमते हैं या उनके सिर पर उंगली फिराते हैं वगैरह। होल्ट कहते हैं कि हम बच्चे को एक वस्तु से ज़्यादा कुछ नहीं समझते हैं। और उस वस्तु का उपयोग हम महज़ अपने मक़सदों की पूर्ति के लिए करते हैं बिना पूछे कि क्या उसको अच्छा लगेगा या उसको इसमें मज़ा आएगा। होल्ट ने ऐसे कई सारे लोगों से चर्चा की जो कि वाक़ई अपने बचपन में वयस्कों के आलिंगन या चुंबन से डरते थे। लेकिन चूंकि वयस्कों को बच्चों को चूमना अच्छा लगता है और इस कारण बच्चों को बाध्य किया जाता है। होल्ट आगे कहते हैं कि यदि चार साल के एक व्यक्ति (जी हां व्यक्ति) की ज़रूरतों और एक साठ साल के व्यक्ति की ज़रूरतों में यदि टकराव हो तो बच्चे को ही क्यों घुटने टेकने पड़ते हैं। क्या उसकी इच्छाओं का सम्मान सिर्फ़ इसलिए नहीं होता क्योंकि वह छोटा है? सच तो यह है कि जो वयस्क बच्चे की भावनाओं को समझे बिना आलिंगनबद्ध करे वह एक बाल वस्तु को चिपटाता है।

होल्ट यह भी कहते हैं कि ऐसा नहीं कि बच्चों को प्यार करना कोई ख़राब बात है लेकिन जब तक बच्चे की इच्छा नहीं तब तक हमको उसके साथ कोई हरकत करने का भी अधिकार नहीं है। जब बच्चा ख़ुद दोस्ताना महसूस करे, मस्ती और संपर्क की इच्छा उसमें जगे, तब उसको चौड़ी मुस्कान देने और खेलने का समय होता है। अगर वह संकेत दे तो हम उसको गोद में उठा सकते हैं, उसको उछाल सकते हैं, गले लगा सकते हैं। दरअसल बच्चे हमारे बीच जो फ़ासला रखना चाहते हैं उसको पहचानना होगा और उसका सम्मान करना सीखना होगा। बिना उसकी आज्ञा के, उसके जीवन में घुसे चले जाने का हक़ नहीं है। ठीक वैसे ही जैसेकि हम किसी वयस्क के साथ नहीं कर सकते। बच्चों को ना कहने का अधिकार हो और रिश्ता कैसे आगे बढ़ेगा, इसके नियम वे ख़ुद ही तय करेंगे।

बच्चों और बचपन के लिए क्या क़दम उठाए जाने चाहिए इस बाबत होल्ट कहते हैं कि हमको बच्चों के साथ बर्ताव करने में उन तथाकथित बातों को भूलना होगा। होल्ट अपील करते हैं कि बच्चों के साथ शिष्टता के साथ बर्ताव किया जाए। हालांकि यह मसला इतना आसान नहीं है जिन्होंने ताक़तवरों के सामने अतिविनम्र और कमज़ोरों से अभद्र व्यवहार करना और उन पर धौंस जमाना सीखा है। और जिन्होंने बच्चों को प्रेम की वस्तु के रूप में या अपने पसंदीदा पालतू कुत्ते या बिल्ली सा बर्ताव करते हैं। असल में शिष्ट बर्ताव का मतलब ही यह है कि सामनेवाले व्यक्ति का आत्मसम्मान और अस्मिता के साथ बर्ताव करना।

होल्ट केवल बच्चों के सम्मान की बात करके ही इतिश्री नहीं करते बल्कि वह कहते हैं कि बच्चों को अधिक जानकार, दक्ष और आत्मनिर्भर बनाने को प्रोत्साहित करना चाहिए। बच्चों को निरा बुद्धू मानने पर होल्ट को सख़्त ऐतराज़ भी है। इस बात का एक मज़ेदार उदाहरण है कि यदि किसी बच्चे के पास कुछ पैसा है तो उसको फिजुलख़र्ची में उड़ा देगा। किसी ने उनसे पूछा कि यदि किसी बच्चे को क्रेडिट कार्ड दे दिया जाए तो वह टॉफियों की दुकान पर जाकर टॉफियां नहीं खरीद लेगा। इस पर होल्ट कहते हैं कि ऐसा अब तक तो नहीं देखा गया और यदि कोई बच्चा ऐसा करता भी है तो उस अनुभव से सीखेगा। उसके लिए यह सबसे बड़ी सीख होगी कि इतनी टॉफियां तो वह खा नहीं सकता। आगे इस बात का ध्यान रखेगा।

कुल मिलाकर यह पुस्तक बच्चों और बाल्यावस्था के संदर्भ में सोचने के नए द्वार खोलती है। पुस्तक का कवर और हर अध्याय के प्रारंभ में अलारिप्पू नामक संस्था द्वारा प्रकाशित कैलेंडर के ख़ूबसूरत चित्रों से सजाया गया है।

पुस्तक का नाम– **बचपन से पलायन**
लेखक – **जॉन होल्ट**
अंग्रेजी से अनुवाद – पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा
प्रकाशक – एकलव्य भोपाल
कीमत – 90 रुपए

मिलने का स्थान

पिटारा

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग
उदयपुर राजस्थान

के.आर.शर्मा, ''बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश'' की संपादन प्रक्रिया में संलग्न।

लीक से हटकर

पाठ्यपुस्तकों से हटकर शिक्षा

वि.वि. सिंह

पाठ्यपुस्तकों के रूप में ढेर सारी सामग्री बच्चों को दी जाए, वे उन्हें पढ़कर, रटकर, परीक्षा में उनको उसी रूप में प्रस्तुत कर दें और अधिक से अधिक अंक प्राप्त कर लें; यह हमारी शिक्षा के दायरे को अति–संकीर्ण बना देता है।

बच्चों में समझ विकसित हो, वे स्वयं जानकारी हासिल करें, वे तरीक़े जानें जिनसे जानकारी प्राप्त की जा सकती है और उम्र व अनुभव बढ़ने के साथ–साथ प्राप्त जानकारी एवं संकलित तथ्यों का विश्लेषण कर सकें और स्वयं निष्कर्ष निकाल सकें – यह वास्तविक शिक्षा है और यही हमारा प्रयास होना चाहिए। उससे उनकी अवलोकन क्षमता का विकास होगा और उनकी सोचने, समझने की क्षमता बढ़ेगी तभी वे व्यावहारिक बन सकेंगे। उनमें मौलिक सोच और स्वयं निर्णय लेने की क्षमता विकसित होगी।

हमें वे तरीक़े सोचने होंगे, जिनके माध्यम से हम बच्चों को उपर्युक्त अनुभव दे सकें। कुछ प्रयोग जो हम लोगों ने आजमाएं, उनकी चर्चा करना चाहूंगी।

तैयारी की गई। इसमें ऐसे प्रश्न रखे गए, जिनके उत्तर बच्चे स्वयं देखकर या पूछकर जान सकते हों, कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं – गांव में कितने पक्के और कितने कच्चे बने मकान हैं? पूरे गांव में कितने हैण्डपम्प हैं? कितने विद्यालय हैं? वे किस स्तर के हैं? क्या गांव में कोई धार्मिक स्थल है? क्या दैनिक आवश्यकता की सामग्री ख़रीदने हेतु दुकानें हैं? गांव में अधिकतर लोगों के जीविकोपार्जन के क्या साधन हैं? गांव का नाम कैसे पड़ा? गांव में कौन–कौन से त्यौहार मनाए जाते हैं? आदि।

कक्षा 5 के बच्चों ने सामाजिक विज्ञान अध्यापिका के साथ गांव में जाकर 5 समूहों में बंटकर जानकारी प्राप्त की और फिर एक रिपोर्ट तैयार की।

छोटे स्तर पर किए गए इस सर्वेक्षण से बच्चों को कक्षा–कक्ष से बाहर निकलकर स्वयं जानकारी प्राप्त करने का अनुभव प्राप्त हुआ।

हमारे स्कूल का कैम्पस बहुत बड़ा है। तमाम पेड़–पौधे, वनस्पति कैम्पस में ही विद्यमान हैं, अनेक पक्षी दिखाई देते हैं। स्कूल में काफ़ी मूर्तियां लगी हैं जो मुख्यतः वैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों की हैं। कई पट्टिकाएं लगी हुई हैं जिनसे ज्ञात होता है कि अमुक बिल्डिंग, हॉल या कमरा किस अवसर पर, किस सन् में बना, उद्घाटन किसके द्वारा किया गया। बच्चों को एक दिन दो कालांशों में यह जानकारी समूहों में प्राप्त करनी थी। अपनी नोट बुक्स लेकर वे निकल पड़े और दौड़–दौड़कर अतीव उत्साह से जानकारी एकत्र कर ली। पेड़–पौधों के नाम के साथ उनकी पहचान भी उन्हें हुई।

उदयपुर में पश्चिमी क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र द्वारा निर्मित एवं संचालित 'शिल्प ग्राम' स्कूल से लगभग 5 किलोमीटर पर स्थित है। शैक्षिक भ्रमण के अन्तर्गत सभी बच्चों को वहां पैदल ले जाया गया। लंच बॉक्स व पानी की बोतल भी बच्चों के साथ थी। फतहसागर के किनारे चलते–चलते 5 किमी. की दूरी भी अधिक प्रतीत नहीं हुई। वहां का भव्य मुख्यद्वार, अन्दर जगह–जगह बनाई गई अलग–अलग राज्यों की शैली में कलाकृतियां व झोंपड़ियां देखने में सभी को आनन्द आया। कुछ जानकारियां जो बच्चों को पता करनी थीं, उसके कुछ नमूने इस प्रकार हैं – शिल्प ग्राम का उद्घाटन कब व किसके द्वारा हुआ? वहां कौन–कौन से राज्यों की झोंपड़ियां बनी हुई हैं? शिल्पग्राम में कौन–कौन से उत्सव होते हैं तथा वे किस समय मनाए जाते हैं? शिल्प ग्राम कितने बीघा भूमि पर बना हुआ है? पीने का पानी कहां–कहां उपलब्ध है? शिल्प ग्राम संग्रहालय की क्या विशेषता है? वार्ली पेण्टिंग किस राज्य की विशेषता है? आदि।

छोटे–छोटे समूहों में बच्चों ने इन प्रश्नों के उत्तर पता किए और अपनी डायरी में नोट किए। मुक्ताकाशी रंगमंच भी आकर्षण का केन्द्र रहा। बच्चों ने उसपर सांस्कृतिक प्रस्तुतियां भी दीं। इस तरह पूरे दिन एक अलग तरह का अनुभव पाकर सभी बच्चे बड़े प्रसन्न नज़र आ रहे थे।

स्कूल कैम्पस से दिखती एक पहाड़ी पर अवस्थित नीमचमाता का मंदिर हम सबके लिए हमेशा से आकर्षण, आनन्द व आस्था का केन्द्र बिन्दु रहा है। 800 मीटर लम्बाई का रास्ता तय करके लगभग 600 फीट ऊंचाई पर पहुंचकर एक अलग तरह की आनन्दानुभूति होती है। विद्यालय की स्थापना के 76–77 वर्षों से नीमचमाता की पहाड़ी विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को ऊंचाइयों को छूने की प्रेरणा देती रही है।

एक दिन हम लोगों ने यह तय किया कि स्कूल के आधे समय में अर्थात् 4 कालांशों में कक्षा 5 के दोनों वर्गों के लगभग 60–65 बच्चे ऊपर चढ़कर जाएंगे और अलग–अलग तरह की जानकारी एकत्र करेंगे। उदाहरणार्थ –

1. नीमचमाता पहाड़ी पर कौन–कौन से पेड़–पौधे दिखाई देते है?
2. वर्ष में किन दिनों यहां सबसे ज़्यादा भीड़ होती है? सप्ताह के किस दिन अधिक लोग दर्शनार्थ आते हैं?
3. मंदिर मार्ग एवं मंदिर के आस–पास जो संदेश लिखे हैं, उनमें से जो आपको अच्छे लगे ऐसे 5 संदेश लिखिए।
4. मन्दिर के रास्ते पर कितनी जगह पीने के पानी की सुविधा है?
5. ऊपर पहुंचकर मंदिर से उदयपुर के कौन–कौन से क्षेत्र दिखाई देते हैं? आदि।

मंदिर में उन दिनों कुछ विस्तार कार्य चल रहा था। ईंटें व रेती ऊपर तक पहुंचाने का एक तरीक़ा निकाला गया था – चढ़ाई शुरू करने से पूर्व ही एक ओर रेती भरी हुई कपड़े की थैलियाँ तथा ईंटें रखी गई थीं। लोग अपनी श्रद्धा व इच्छा से वह सामग्री ऊपर ले जाते। हमारे बच्चे भी खुशी–खुशी थैलियां और एक या दोनों हाथों में एक–एक ईंट उठाकर ऊपर चढ़े।

अगले दिन बच्चों को उन सभी बातों को व्यवस्थित एवं संक्षिप्त रूप में लिखकर सभी बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत करना था। 5–6 बच्चों के समूह में एक को यह प्रस्तुति करनी थी। काफ़ी जानकारी बच्चों ने एकत्र की थी। विशेषकर पहाड़ी मार्ग पर व ऊपर भी पट्टिकाओं में लिखकर लगाई गई नीति सम्बन्धी बातों को उन्होंने संकलित किया था। एक समूह के बच्चों ने मंदिर के प्रवेश द्वार पर काफ़ी ऊंचाई पर लिखा संस्कृत का श्लोक भी सुनाया। शारीरिक श्रम, आनन्द प्राप्ति के साथ ज्ञानार्जन का यह अनूठा अनुभव था। ऐसे अनुभव बच्चों को बार–बार दिए जाने चाहिए।

हमारे विद्यालय की एक विशिष्ट प्रवृत्ति वनशाला में 8–9 दिन के लिए स्कूल से बाहर जाकर कैम्प स्थल के आस–पास के स्थानों की जानकारी प्राप्त की जाती है। वनशाला में कुछ अध्ययन समूह (श्रेणी) यथा साहित्य श्रेणी, पर्यावरण अध्ययन श्रेणी, सामाजिक श्रेणी, कला एवं संगीत श्रेणी आदि बनाई जाती हैं। साहित्य श्रेणी के विद्यार्थी स्थानीय लोगों से मिलकर वहां प्रचलित लोककथाओं, लोकगीतों, लोकोक्तियों का संकलन करते हैं। स्थानीय बोली के कुछ शब्दों के समानार्थक हिन्दी शब्दों के चार्ट तैयार करते हैं। पर्यावरण अध्ययन श्रेणी के अन्तर्गत स्थानीय वनस्पति, प्रमुख उपज, वहां पाए जाने वाले

प्रमुख पशुओं–पक्षियों, वहां की मिट्टी, जलस्रोत आदि की जानकारी प्राप्त करते हैं और उन्हें चार्ट व नक़्शों पर दर्शाते हैं। कुछ बच्चे लेख लिखते हैं, संग्रह तैयार करते हैं या मॉडल बनाते हैं। सामाजिक श्रेणी में मुख्य रूप से स्थानीय लोगों का रहन सहन, भोजन, रीति–रिवाज़, मान्यताएं, त्यौहार, प्रमुख व्यवसाय, आवागमन के साधन आदि का पता लगाते हैं। कला श्रेणी के बच्चे वहां के मांडने, कलाकृतियों, संगीत, नृत्य आदि से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करते हैं। पाठ्यपुस्तकों से हटकर यह जानकारी बच्चों के लिए बहुत उपयोगी होती है और यह इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती है कि बच्चे स्वयं ज्ञान अर्जित करते हैं और इस तरह वे उन तरीक़ो से भी अवगत हो जाते हैं जिनसे ज्ञानार्जन किया जा सकता है और यह अनुभव उन्हें जीवन में आगे काम आता है।

एक बार वनशाला के लिए जो स्थल चुना गया उसके रास्ते में कई दर्शनीय व धार्मिक स्थल थे। ऐसा तय हुआ कि हम बस से जाते हुए इन स्थलों पर रुककर जानकारी प्राप्त करेंगे। दो तरह की प्रश्नावलियां तैयार कर ली गईं। अपेक्षित संख्या में उनकी प्रतिलिपियां जुटाई गईं।

कक्षा 4 व 5 के बच्चे थे, उन बच्चों को 5–6 के समूहों में बांट दिया गया एक बच्चे को नेतृत्व करना था। बच्चों में लोगों से पूछ–पूछकर प्रश्नावलियां भरने के प्रति अत्यधिक उत्साह नज़र आया। एक स्थल पर बस के रुकते ही बच्चे बड़ी फुर्ती से बसों से उतरकर अपने–अपने समूह में जाकर जानकारी हासिल करने लगते। वहां के व्यवस्थापकों, कार्यकर्त्ताओं के अतिरिक्त दर्शनार्थियों एवं भ्रमणार्थियों से भी वे बातचीत करने में हिचकिचाते नहीं। इन स्थलों पर लगी हुई पट्टिकाओं एवं उपलब्ध प्रकाशित सामग्री से भी आवश्यक सूचनाएं नोट कर लेते। वनशाला स्थल पर पहुंचकर उन्होंने सम्पूर्ण जानकारी को चार्ट्स के रूप में शीट्स पर लिखा। जब उन्हें प्रदर्शित किया गया तो बच्चे एक दूसरे के चार्ट्स को पढ़कर आनन्दित हो रहे थे और कुछ उन बातों को पढ़कर जो वे पता नहीं लगा सके थे, चकित थे। वे आपस में चर्चा कर रहे थे कि अमुक बात कहां से पता लगी?

इसी प्रकार विद्यालय की दूसरी विशिष्ट प्रवृत्ति वार्षिकोत्सव प्रायोजना अनौपचारिक शिक्षा का एक सशक्त माध्यम है, जिसमें विद्यार्थी पाठ्यपुस्तकों एवं पाठ्यक्रम से हटकर बहुत कुछ सीखते हैं। इसके अन्तर्गत किसी एक विषय का चयन कर, विभिन्न पहलुओं से अध्ययन हेतु कुछ अध्ययन समूह (श्रेणी) बना लिए जाते हैं। विद्यार्थी अपनी श्रेणी से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त कर लेख, चार्ट्स, नक़्शे, समय रेखा, कालचक्र, चित्र, मॉडल संकलन आदि तैयार करते है। प्रायोजना का दूसरा पक्ष पेजेण्ट है। मंच पर विभिन्न विधाओं के माध्यमों से प्रस्तुत कार्यक्रम द्वारा जहां बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं वहीं शिक्षकों के लिए भी यह कार्य बड़ा चुनौतीपूर्ण होता है। ज्ञानार्जन के साथ–साथ उनकी भी ट्रेनिंग होती है। प्रति दूसरे वर्ष लिए जानेवाले विषयों में कुछ इस प्रकार हैं – हिमालय, भारत के पड़ोसी देश, राजस्थान की जनजातियां, भारत – विभिन्न धर्मों का संगम, जल और जीवन आदि।

'जल और जीवन' विषय पर काम करते हुए बच्चों ने साहित्य श्रेणी में जहां जल से सम्बन्धित कविताओं, गीतों का संकलन किया, वहीं जल का भौगोलिक दृष्टि से महत्त्व, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जल सम्बन्धी अध्ययन किया। स्वयं वहीं जल के नमूनों के परीक्षण किए। विभिन्न जल स्रोतों की व्यथा को काव्य रूपक के रूप में, अतिवृष्टि के कारण बाढ़, अनावृष्टि के कारण अकाल आदि की नाटक रूप में

प्रस्तुति अत्यन्त प्रभावपूर्ण रही। शायद पुस्तक में पढ़े किसी पाठ से अधिक बच्चों ने इस तरह से जाना और सीखा।

गांधीजी के अनुसार पाठ्यपुस्तकों को शिक्षण का माध्यम माना जाए तब तो शिक्षक की वाणी की शायद ही कोई क़ीमत रह जाए। जो शिक्षक पाठ्यपुस्तकों में से सिखाता है, वह अपने विद्यार्थियों को स्वतंत्र और मौलिक विचार करने की शक्ति नहीं देता। इससे शिक्षक स्वयं पाठ्यपुस्तक का ग़ुलाम बन जाता है, और उसे अपना स्वतंत्र तेज दिखाने का मौक़ा ही नहीं मिला पाता। इससे मालूम होता है कि पाठ्यपुस्तकें जितनी कम होंगी, उतना ही शिक्षकों और विद्यार्थियों को लाभ होगा।

गांधीजी ने शिक्षा के मूल्य को भी मानवोपयोगी बनाया और समाज के अनुरूप उसे ढालने का प्रयास किया। उनका कहना था कि शिक्षा का सम्बन्ध जीवन से है, अतः शिक्षा और जीवन का आपसी तालमेल ठीक होना चाहिए, क्रियात्मकता का संचार होना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में भी 'ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना, पढ़ाई रटन्त प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना, पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुंमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि पाठ्यपुस्तक केन्द्रित बनकर रह जाए आदि निर्देशक सिद्धान्तों को प्रस्तावित किया गया है। बच्चों की सक्रिय व्यस्तता को सुनिश्चित करने हेतु स्कूलों द्वारा ऐसे अवसर प्रदान किए जाने चाहिए ताकि बच्चे प्रश्न पूछकर और चर्चा एवं चिन्तन कर अवधारणाओं को आत्मसात् करें या नए विचार रचें। सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है आस–पास के वातावरण, प्रकृति, चीज़ों व लोगों से कार्य व भाषा दोनों के माध्यम से अन्तःक्रिया करना। इधर–उधर घूमना, खोजना, अकेले काम करना या अपने दोस्तों या वयस्कों के साथ काम करना, भाषा को पढ़ना, अभिव्यक्त करना, पूछने और सुनने के लिए प्रयोग करना, ये कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण क्रियाएं हैं, जिनसे सीखना संभव होता है।''

वि.वि. सिंह, पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन सोसायटी जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

अध्यापक के लिए सामान्य टिप्पणियां

महान रूसी साहित्यकार लेव निकोलायेविच तोलस्तोय (1828–1910) सारे विश्व में अपने उपन्यासों, नाटकों तथा कहानियों के लिए जाने जाते हैं, जो विश्व की बहुत सी भाषाओं में प्रकाशित होते हैं और समस्त मानव संस्कृति की अमर निधि माने जाते हैं। महान साहित्यकार की कलात्मक रचनाएं कोई डेढ़ सौ वर्षों से मानव जाति को उद्वेलित करती आ रही हैं।

किन्तु विश्व साहित्य में यह तथ्य अपेक्षाकृत कम ज्ञात है कि लेव तोलस्तोय एक बड़े शिक्षा–सिद्धान्तकार और बच्चों के शिक्षण तथा पालन के क्षेत्र में नये विचारों, नयी पद्धतियों के प्रवर्तक भी थे। गहन चिंतन, जीवनीय प्रेक्षणों और अथक सृजनात्मक श्रम ने महान विचारक को गंभीर शिक्षाशास्त्रीय निष्कर्षों पर पहुंचाया था।

लेव तोलस्तोय की शिक्षाशास्त्रीय रचनाओं के संबंध में यह याद रखा जाना चाहिए कि वह अपनी इन रचनाओं को साहित्यिक रचनाओं से अधिक मूल्यावान मानते थे, और यह बात उन्होंने बहुत बार कही थी।

एक देहाती स्कूल की स्थापना उन्होंने ख़ुद की थी। अध्यापक के रूप में उनका सारा व्यावहारिक कार्यकलाप उनकी सैद्धान्तिक तलाशों का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

स्कूल में काम करते हुए लेव तोलस्तोय ने बहुत शीघ्र ही अनुभव कर लिया कि बच्चों को सिखाना आसान और मामूली काम नहीं है, कि इसके लिए कैसी भी शिक्षा– यहां तक कि विश्वविद्यालयी शिक्षा भी– पर्याप्त नहीं होगी, क्योंकि सफल अध्यापक होने के लिए विशेष प्रशिक्षण आवश्यक है।

विद्यार्थी सीखने–पढ़ने में अच्छा हो, इसके लिए आवश्यक है कि वह स्वेच्छा से सीखे–पढ़े और स्वेच्छा से सीखने–पढ़ने के लिए आवश्यक है कि :

(1) उसे जो सिखाया जा रहा है, वह उसके लिए बोधगम्य तथा रोचक हो और

(2) उसकी आत्मिक शक्तियां उपयुक्ततम अवस्था में हों।

विद्यार्थी को जो सिखाया–पढ़ाया जा रहा है, वह उसके लिए बोधगम्य और रोचक हो। इसके लिए दो चरमों से बचें : एक, उसे वह न बतायें, जिसे वह जान या समझ नहीं सकता, और दो, उसे वह न बतायें, जिसे वह अध्यापक जैसे ही और कभी–कभी तो उससे बेहतर भी जानता है। जिसे विद्यार्थी नहीं समझ सकता, उसकी चर्चा न करने के लिए हर तरह की परिभाषाओं, वर्गीकरणों और सामान्य नियमों से बचें। सभी पाठ्यपुस्तकों सूत्रों, परिभाषाओं, कोटियों और नियमों से भरी होती हैं, जबकि विद्यार्थी को ये ही नहीं बताये जाने चाहिए।

व्याकरणिक और वाक्यविन्यासात्मक परिभाषाओं, शब्दों के भेदों तथा रूपों की कोटियों और सामान्य नियमों से दूर रहें। विद्यार्थी को शब्दों के रूपों का नाम लिये बिना उन्हें बदलने और जो मुख्य बात है, ज़्यादा पढ़ने तथा पढ़े हुए को समझने और अपने दिमाग़ से ज़्यादा लिखने को बाध्य करें। उसे सही करें, तो इस आधार पर नहीं कि उसने जो लिखा है, वह नियम, परिभाषा या वर्गीकरण के विरुद्ध है, बल्कि इस आधार पर कि यह अस्पष्ट है, अच्छा नहीं लगता है या समझ में नहीं आता है।

प्राकृतिक विज्ञानों के वर्गीकरण, अवयवियों के विकास विषयक अनुमानों और उनकी संरचना की व्याख्याओं से बचें। इसके बदले विद्यार्थी को विभिन्न जीवों तथा

वनस्पतियों के जीवन के बारे में अधिक से अधिक विस्तृत जानकारियां दें।

इतिहास और भूगोल में देशों तथा घटनाओं के सामान्य सिंहावलोकनों तथा विभाजनों से बचें। विद्यार्थी के लिए ऐतिहासिक और भौगोलिक सिंहावलोकन तब तक रुचिकर नहीं हो सकते, जब तक कि उसका क्षितिज के पार किसी चीज़ का अस्तित्व होने में अभी ठीक से विश्वास नहीं है और राज्य, सत्ता, युद्ध तथा क़ानून के बारे में, जो इतिहास का विषय हैं, वह अभी कुछ नहीं जानता है। वह भूगोल और इतिहास में यक़ीन करे, इसके लिए उसे भौगोलिक और ऐतिहासिक अनुभव प्रदान कीजिये। उसे उन देशों के बारे में जितना भी विस्तार से हो सके, बतायें, जिन्हें आप जानते हैं। ऐसा ही उन ऐतिहासिक घटनाओं के संबंध में भी करें, जो आपको भली भांति मालूम हैं।

खगोलविज्ञान में विद्यार्थी को सौरमंडल के बारे में और पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने तथा सूर्य के गिर्द चक्कर लगाने के बारे में बताने से बचें (हालांकि अध्यापक इसे बहुत पसंद करते हैं)। नभोमंडल, सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की दृश्य गति, सूर्य तथा चंद्र ग्रहणों और पृथ्वी पर विभिन्न बिंदुओं से किन्हीं परिघटनाओं के अवलोकन के बारे में कुछ न जाननेवाले विद्यार्थी के लिए यह बताना कि पृथ्वी घूमती और चक्कर लगाती है, प्रश्न का स्पष्टीकरण और व्याख्या नहीं, बल्कि बिला वजह सिद्ध की जानेवाली निरर्थक बात है। जो विद्यार्थी मानता है कि पृथ्वी पानी में मछलियों पर टिकी हुई है, उसका सोच उस विद्यार्थी की अपेक्षा कहीं अधिक स्वस्थ है, जो मानता तो है कि पृथ्वी घूमती है, लेकिन इसे समझ और समझा नहीं सकता।

विद्यार्थी को आकाश की दृश्य परिघटनाओं के बारे में, यात्राओं के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा बतायें और ऐसी ही बातें समझायें, जिन्हें वह दृश्य परिघटनाओं के आधार पर ख़ुद परख सकता है।

अंकगणित में हिसाब को सरल बनानेवाले सूत्र और आम नियम बताने से बचें। सामान्य नियम बताये जाने से जो हानि होती है, वह सबसे ज़्यादा गणित के मामले में ही दिखायी देती है।

आप विद्यार्थी को कोई क्रिया करने का जितना ही छोटा रास्ता सुझायेंगे, विद्यार्थी उस क्रिया को उतना ही कम समझ और जान पायेगा।

सबसे छोटी अवकलन पद्धति दशमलव पद्धति है, और वही सबसे कठिन भी है। जोड़ करने का सबसे छोटा तरीक़ा छोटी कोटियों से आरंभ करना और हासिल पाये हुए एक अंक को अगली कोटि में शामिल करना है। मगर यही सबसे अस्पष्ट तरीक़ा है। विद्यार्थी को घटाने के सवालों में हर शून्य को नौ के बराबर मानना सिखाने या वज्रगुणन के ज़रिये एक हर में समानीत करना सिखाने से ज्यादा आसान कुछ नहीं है, लेकिन विद्यार्थी इन नियमों को सीखकर भी देर तक नहीं समझ पायेगा कि ऐसा क्यों किया जाता है।

सभी अंकगतिणीय सूत्रों और नियमों से बचें और बच्चों से ज़्यादा क्रियाएं करवायें। जब उन्हें सही करें, तो इसलिए नहीं कि सवाल नियम के अनुसार नहीं किया गया है, बल्कि इसलिए कि किये गये में कोई तुक या तर्क नहीं है।

विद्यार्थियों को विज्ञान के ऐसे असाधारण परिणाम (स्कूलों के लिए लिखी गयी विदेशी पुस्तकों में उन पर बहुत ही ज़ोर दिया हुआ होता है।) बताने से बचें, जैसे पृथ्वी अथवा सूर्य का भार कितना है, सूर्य किन पिंडों से बना है, कैसे वृक्ष अथवा मनुष्य कोशिकाओं से बने हुए हैं, लोगों ने कैसी–कैसी अजीबो–ग़रीब मशीनें ईजाद की हैं, वग़ैरह। बात यही नहीं है कि अध्यापक विद्यार्थी को ऐसे तथ्य बताकर उसके मन में यह बात बिठाता है कि

विज्ञान बहुत सारे रहस्यों पर से परदा हटा सकता है, जिसके बारे में बुद्धिमान विद्यार्थी बहुत जल्दी ही जान जाता है कि यह सच नहीं है, बात यह भी है कि नग्न तथ्य या परिणाम विद्यार्थी पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं और उसे शब्द में अंध आस्था रखना सिखा देते हैं।

समझ में न आनेवाले, संकल्पना से मेल न खानेवाले अथवा अर्थोंवाले रूसी शब्दों का और ख़ास तौर से विदेशी शब्दों का प्रयोग न करें। उनकी जगह पर ऐसे शब्द इस्तेमाल करने की कोशिश करें, जो चाहे सटीक न हों और लंबे भी हों, पर विद्यार्थी के मस्तिष्क में आवश्यक संकल्पनाएं अवश्य जगाते हों।

विद्यार्थी को ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी दें और ज्ञान–विज्ञान की सभी शाखाओं के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा प्रेक्षण करने को प्रोत्साहित करें। पर इसके साथ ही उसे सामान्य निष्कर्षों, परिभाषाओं, सूत्रों, कोटियों, पारिभाषिक शब्दावली, आदि की कम से कम याद दिलायें।

इनकी याद सिर्फ़ तभी दिलायें, जब विद्यार्थी को इतनी जानकारी हो जाये कि वह ख़ुद सामान्य निष्कर्षों की सत्यता की जांच कर सके, और जब सामान्य निष्कर्ष उसके लिए कठिनाई नहीं, बल्कि आसानी पैदा करते हैं।

विद्यार्थी के लिए पाठ अरुचिकर तथा अनाकर्षक होने का दूसरा कारण यह है कि अध्यापक उस चीज़ को भी देर तक और पेचीदे ढंग से समझाता है, जिसे विद्यार्थी बहुत पहले ही समझ चुका है।

इस तरह से समझाया जाना आम बात है, ख़ास तौर से जब अध्यापक विद्यार्थी को बताने लगता है कि मेज़ क्या है, या घोड़ा किस जानवर को कहते हैं, या किताब और हाथ के बीच क्या अंतर है या एक कलम के साथ एक और कलम रख देने पर कुल कितनी कलमें हो जायेंगी।

आम तौर पर विद्यार्थी को वही बताइये, जो वह नहीं जानता और जो अगर आप भी नहीं जानते होते, तो बड़े चाव से जानना चाहते।

प्रायः ऐसा होता है कि इन सभी नियमों का पालन करने पर भी विद्यार्थी समझ नहीं पाता। इसके दो कारण होते हैं। या तो जिस वस्तु के बारे में आप बता रहे हैं, विद्यार्थी उसके बारे में पहले ही सोच चुका है और अपने ढंग से उसकी अपने लिए व्याख्या कर चुका है। अगर ऐसी बात है, तो विद्यार्थी को अपना मत समझाने के लिए प्रेरित करें अगर वह ठीक नहीं है, तो उसका खंडन करें, और अगर सही है, तो उसे बतायें कि आप और वह उस वस्तु को एक ही जैसे देखते हैं, मगर अलग–अलग पहलुओं से।

या फिर विद्यार्थी इसलिए नहीं समझता है कि इसके लिए अभी वक़्त नहीं आया है। यह बात अंकगणित में विशेषतः दिखायी देती है। जिसके बारे में आप घंटों से व्यर्थ मगज़पच्ची कर रहे थे, वह कुछ समय बाद सहसा एक ही मिनट में स्पष्ट, बोधगम्य हो जाती है। इसलिए जल्दबाज़ी कभी न करें।

विद्यार्थी की आत्मिक शक्तियां उपयुक्ततम अवस्था में हों, इसके लिए आवश्यक है कि :

(1) विद्यार्थी जहां पढ़ रहा है, वहां उसके लिए नये, अनजान विषय और लोग न हों,

(2) वह अध्यापक या साथियों से शरमाये नहीं,

(3) (यह बहुत महत्त्वपूर्ण है) उसे डर न हो कि ठीक से न सीखने के लिए, यानी समझ न पाने के लिए उसे सज़ा मिलेगी। मनुष्य का दिमाग़ तभी कार्य करता है, जब उस पर कोई बाहरी दबाव नहीं होता।

(4) दिमाग़ थके नहीं। इसका पता लगा पाना कठिन है कि कितनी उम्र में कितने घंटे या मिनट पढ़ाई के बाद विद्यार्थी का दिमाग़ थक जाता है, लेकिन अध्यापक अगर ध्यान से देखे, तो उसे थकावट के कुछ अचूक लक्षण दिखायी दे सकते हैं। ज्यों ही विद्यार्थी का दिमाग़ थका लगे, उससे शारीरिक हरकतें करवाइये। विद्यार्थी के थके होने पर भी उसे रोके रखने की ग़लती करने के बजाय उसके थके न होने पर भी उसे छोड़ देने की ग़लती करना कहीं बेहतर है। बच्चे में ज़िद्द की भावना इसी कारण पैदा होती है; और

(5) पाठ और विद्यार्थी की क्षमता के बीच संतुलन हो, यानी पाठ न बहुत ज़्यादा आसान हो, न बहुत ज़्यादा कठिन।

अगर पाठ बहुत अधिक कठिन होगा, तो विद्यार्थी बताये हुए काम को कर पाने की आशा खो बैठेगा, कोई प्रयत्न नहीं करेगा और दूसरी ओर ध्यान बंटा लेगा। अगर पाठ बहुत आसान होगा, तो उस हालत में भी यही चीज़ होगी।

प्रयत्न किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी का सारा ध्यान दिये हुए पाठ पर केंद्रित रह सके। इसके लिए विद्यार्थी को ऐसा काम दें कि हर पाठ उसे पढ़ाई में आगे की ओर बढ़ाया हुआ क़दम जैसा लगे।

अध्यापक के लिए सिखाना जितना आसान होता है, विद्यार्थियों के लिए सीखना उतना ही कठिन होगा। यही बात विपरीत क्रम में भी देखी जाती है। जितना ज़्यादा अध्यापक स्वाध्याय करेगा, हर पाठ की तैयारी पर वक़्त लगाएगा और विद्यार्थियों की क्षमता का ध्यान रखेगा, जितना ही ज़्यादा वह विद्यार्थी के विचारों का ध्यान रखेगा, और जितना ही ज़्यादा सवाल–जवाब किये जायेंगे, उतना ही ज़्यादा विद्यार्थी के लिए सीखना आसान होगा।

विद्यार्थी को जितना ज़्यादा अपने भरोसे, अध्यापक के ध्यान की अपेक्षा न करनेवाले कामों के लिए, नक़ल करने, इमला देने, बिना समझे ज़ोर–ज़ोर से पढ़ने और कविताएं याद करने के लिए छोड़ा जायेगा, उतनी ही ज़्यादा उसे कठिनाई होगी।

लेकिन अगर अध्यापक अपने काम में सारी ताक़त लगायेगा, तो वह बहुत सारे विद्यार्थियों के साथ ही नहीं, एक विद्यार्थी के साथ भी लगातार महसूस करेगा कि जो किया जाना चाहिए, उसे वह क़तई नहीं कर रहा है।

अपने से इस स्थायी असंतोष के बावजूद लाभ पहुंचाने की चेतना होने के लिए एक गुण का होना आवश्यक है। यह गुण ज्ञान की कमी को सहज ही पूरा करके अध्यापकीय कौशल में भी और तैयारी में भी वृद्धि कर देता है।

अगर अध्यापक ने तीन घंटे के पाठ के दौरान एक बार भी ऊब महसूस नहीं की है, तो उसमें यह गुण है।

यह गुण प्रेम है। अगर अध्यापक अपने काम से प्रेम करता है, तो वह अच्छा अध्यापक होगा। अगर उसे पिता या माता की तरह सिर्फ़ विद्यार्थी से ही प्रेम है, वह उसी अध्यापक से बेहतर अध्यापक होगा, जिसने सभी किताबें तो पढ़ी हैं, पर जो न अपने काम को और न विद्यार्थियों को ही प्यार करता है।

अगर अध्यापक को काम से भी और विद्यार्थियों से भी प्रेम है, तो वह आदर्श अध्यापक होगा।

लेव तोलस्तोय, शिक्षा शास्त्रीय रचनाएं से साभार।

रपट–4

एक कार्यशाला बुनियादी शिक्षा की

डायट कुमारबाग़ (प. चम्पारण)

मुनीन्द्र कुमार मिश्र, उमेश चंद्र मिश्र

चम्पारण गांधी की कर्मभूमि ही नहीं, बुनियादी शिक्षा की आरंभिक प्रयोगशाला भी है। डायट, कुमारबाग़ परिसर में दिनांक 28–29 अप्रैल 2008 को विद्या भवन (राजस्थान) के तत्त्वावधान में बुनियादी शिक्षा विषयक द्विदिवसीय कार्यशाला का आयोजन प्रेरक और प्रासंगिक रहा। इस कार्यशाला में विभिन्न बुनियादी एवं मध्य विद्यालयों के 35 शिक्षकों ने भाग लिया। कार्यशाला का प्रारंभ डायट, कुमारबाग़ के प्राचार्य श्री विजय कुमार झा एवं विद्या भवन से पधारे प्रतिनिधि के उद्‌बोधन से हुआ।

प्रथम सत्र में परिचय के दौरान प्रतिभागियों ने सदन को अपने शैक्षिक अनुभवों से अवगत कराया। कई शिक्षकों ने अपने छात्र जीवन में बुनियादी शिक्षा का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। दशकों पूर्व ज़िले के कई बुनियादी विद्यालयों में शिक्षा का आदान–प्रदान नीरस और उबाऊ नहीं था। श्रम और ज्ञान का मणिकांचन संयोग थी शिक्षा प्रणाली, जो कुछ प्रतिभागियों के मनोमस्तिष्क पर आज भी अपनी संपूर्ण आभा से आलोकित है।

उन स्वर्णिम दिनों को प्रतिभागियों ने अलग–अलग अंदाज़ में स्वर दिया। बाग़वानी, मूल उद्योग, सहायक उद्योग एवं करके सीखने पर बल देनेवाली प्रणाली प्राप्त ज्ञान को अविस्मरणीय बनाती थी। शिक्षक श्री देवनारायण राम ने कपड़ा बनने से संबंधित प्रक्रियाओं का जीवन्त वर्णन कर यह जता दिया कि बुनियादी शिक्षा 'पक्की शिक्षा' है। परिवेश से प्राप्त वस्तुओं से रंग, लिटमस पत्र, रोशनाई, लेखन सामग्री (खल्ली, रंगीन, खल्ली), चटाई, रस्सी, खिलौनों आदि के निर्माण की विधि जानकर प्रतिभागी चमत्कृत से हो गए।

सदन में बुनियादी शिक्षा से संबंधित कुछ हैण्ड आउट वितरण किए गए जिसमें इसकी प्रासंगिकता एवं उपादेयता पर विस्तार से चर्चा की गयी थी। प्रतिभागियों ने क्रमशः इनका मनोयोगपूर्वक अध्ययन–मनन किया। चर्चा के दौरान जो मुख्य बातें सामने आईं, वे हैं –

(क) गांधीवादी शिक्षा दर्शन के अनुसार शिक्षा में श्रम, सृजन एवं सामाजिकता का समावेश होना चाहिए।

(ख) शिक्षा का परिवेश, समाज एवं छात्र से सीधा जुड़ाव आवश्यक है।

(ग) आपसी समझ–बूझ, समन्वय एवं वैज्ञानिक सोच का विकास प्रत्यक्ष क्रियात्मक अनुभव से ही हो सकता है।

(घ) बुनियादी शिक्षा क्रियात्मक, ज्ञानात्मक एवं नैतिक विकास करने में सक्षम है।

(ङ) प्रारंभिक शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम मातृभाषा ही हो सकती है। मातृभाषा भाव सम्प्रेषण एवं कल्पनाशीलता को नए आयाम देती है साथ ही अन्य भाषाओं को सीखना भी सहज बनाती है।

विद्या भवन के प्रतिनिधि ने रेखांकित किया कि परिवेश से जुड़कर ज्ञानार्जन आनंददायक बन जाता है। रटने–रटाने के बजाय प्रत्यक्ष अनुभव दीर्घजीवी होता है। एक गतिविधि के माध्यम से यह अवधारणा मूर्त हो उठी। प्रतिभागियों द्वारा परिसर में उपलब्ध

वनस्पतियों के पत्तों का नमूना इकट्ठा किया गया। पत्तों के पत्रक्रम–पुष्पक्रम से शुरू हुई चर्चा उनके औषधीय गुणों तक पहुंच गई। नमूना संग्रह, निरीक्षण, तुलना, वर्गीकरण, निष्कर्ष एवं सत्यापन की प्रक्रिया ही वैज्ञानिक अध्ययन की आधारशिला है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव प्रतिभागियों ने किया। साथ ही अध्यापन में इन विधियों के उपयोग की सार्थकता पर भी विचार–विमर्श किया। आंख पर पट्टी बांधकर पत्तियों की पहचान करना एक रोमांचक गतिविधि रही, जिसे बच्चे ही नहीं अपितु बड़े भी पसंद करेंगे।

अक्सर यह मान लिया जाता है कि स्कूल में आने वाले छोटे बच्चे कुछ नहीं जानते। परन्तु सच्चाई यह है कि छोटे बच्चे के पास भी अपने अनुभवों का एक विस्तृत आकाश होता है। बच्चों के अनुभव एवं ज्ञान को सूचीबद्ध करने का लघु प्रयास ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त रहा कि बच्चा कोरा काग़ज़ नहीं होता। आवश्यकता है उससे सार्थक संवाद स्थापित कर उसकी नैसर्गिक प्रतिभा को गतिशीलता एवं सृजनशीलता प्रदान करने की।

इस बात पर बल दिया कि बच्चे से बेहतर संवाद मातृभाषा के माध्यम से ही हो सकता है। अन्य भाषाओं का थोपा जाना उसे कुंठा और अवसाद से भर सकता है जबकि मातृभाषा का प्रयोग सहज तथा उत्फुल्ल बनाती है। दूसरी भाषा सीखने में ऊर्जा का अपव्यय न कर मातृभाषा के माध्यम से अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करना सुगम है।

यह पूछे जाने पर कि क्या स्थानीय भाषा (भोजपुरी) में प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ायी जा सकने लायक कविताएँ हैं? सभी प्रतिभागी उत्साहित दिखे। अल्प समय में ही कई कविताओं और गीतों का संकलन सामने आया। चूंकि प्रतिभागी पांच दलों में बंटे थे, प्रत्येक दल द्वारा एक–एक कविता की प्रस्तुति हुई। दल के एक प्रतिभागी ने भोजपुरी भाषा में संक्षिप्त इतिहास एवं भौगोलिक विस्तार बताते हुए एक लोरी प्रस्तुत की'–

चान मामा चान मामा हंसुआ द
उ हंसुआ काहे के, खरई कटावे के
उ खरई काहे के, बंगला छवावे के
बंगला छवावे के हंसुआ द... चान मामा।

एक अन्य प्रतिभागी ने बटोहिया नामक प्रसिद्ध देशभक्ति गीत प्रस्तुत किया–

सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देशवा से
मोर प्रान बसे हिम खोय रे बटोहिया।।

चम्पारण ज़िले के इतिहास और भूगोल को काव्यात्मक छटा के साथ स्वर मिला ब्रिज बिहारी 'चूर' की कविता 'चम्पारण के लोग हंसेला में–

चम्पारण के लोग हंसेला।
उत्तर में सोमेश्वर खाड़ा
दक्षिण में गंडक के जल धारा
पूरब में बागमती के जानी
पश्चिम में तिरवेनी जी बानी
माघ मास लागेगा मेला।।

इन रचनाओं के भाषा एवं भावपक्ष पर व्यापक चर्चा करते हुए सदन ने इन्हें उच्च स्तरीय श्रेणी में रखा। यह बात भी उभरी कि ऐसी रचनाओं को पाठ्यपुस्तकों में स्थान मिलना चाहिए। 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।' मातृभाषा व्यक्ति को अपनी मिट्टी, अपनी संस्कृति से जोड़ती है तथा आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास पैदा करती है।

अंत में मूल्यांकन पद्धतियों पर भी संक्षिप्त लेकिन सार्थक चर्चा हुई।

कार्यशाला के अंत में पुनः प्राचार्य श्री झा ने शिक्षकों एवं अतिथि विद्वद्जनों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

मुनीन्द्र कुमार मिश्र, उमेश चंद्र मिश्र, बेतिया (प. चम्पारण) ज़िले के बुनियादी विद्यालय में शिक्षक हैं।

डायरी अंश

शहनाज़ की डायरी

शिक्षकों को अपनी दैनिक डायरी लिखनी होती है। ज़्यादातर मामलों में यह एक कर्मकांड सा होता है। कई शिक्षकों की कक्षाएं जीवंत होती हैं मगर वह सब कुछ डायरी में स्थान नहीं ले पाता है।

विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक स्कूल, रामगिरि की शिक्षिका श्रीमती शहनाज़ डी.के. से हमने अनुरोध किया कि उनकी कक्षा में जो भी कुछ होता है उसे वे लिख दें। शहनाज़ ने वह सब कुछ लिखा जो उनकी कक्षा में घटता है।

बेहतर शिक्षा, अर्थपूर्ण शिक्षा, बालकेन्द्रित शिक्षा इन सबको समेटकर देखें–समझें तो क्या उसका अहसास शहनाज़ की कक्षा में झलकता है? क्या आप डायरी के अंशों को पढ़कर शहनाज़ की कक्षा को सक्रिय कक्षा की श्रेणी में रखेंगे? एक सक्रिय कक्षा में और क्या–क्या हो सकता है? यदि आप भी इस दिशा में कुछ कर रहे हों तो हमें ज़रूर लिख भेजें। आपसे अनुरोध है कि अपनी कक्षा के अनुभवों को, सीखने–सिखाने के तरीक़ों को, सीखने–सिखाने में आ रही अड़चनों को लिखें और हमें भेजें।

संपादक

15 से 22 नम्वम्बर 2007

पिछले सप्ताह मैंने सुथारी उद्योग में जाकर कुछ लकड़ी के गट्ठे कटवाए और उसे कक्षा में लाकर रखवा तो बच्चों की भीड़ मेरे पास इकट्ठी हो गई। मैडम ये क्या है? क्यों लाए हो? इनका क्या करेंगे? एक के बाद एक प्रश्न शुरू हो गए। मैंने कहा- ये कुछ खिलौने हैं तुम्हारे लिए। जो चाहो बनाना।

जब मैंने मांटेसरी की किताबों और विद्या भवन द्वारा आयोजित शिक्षक प्रशिक्षण और कार्यशालाओं के माध्यम से जाना था कि बच्चे साधनों का उपयोग स्वयं जान लेते हैं। तब मुझे विश्वास नहीं होता था कि बच्चे खुद कैसे सीखते हैं। मैं 7-8 दिनों से लगातार बच्चों को उन लकड़ी के गुटकों के साथ व्यस्त देखकर आश्चर्यचकित हूं। कैसे बच्चों ने लकड़ी के इन टुकड़ों से अपने सपनों के महल बना डाले। और हर दूसरे दिन उनका पुराना महल टूटकर नया बन जाता। इन दिनों मुझे अपनी कक्षा के हर बच्चे में एक आर्किटेक्ट नज़र आ रहा है। जो हर बार लकड़ी के गट्ठों को जमाने का नया तरीका खोजता है।

12 दिसम्बर 2007

आज विज्ञान की मौखिक परीक्षा और बच्चों का प्रयोग करने का दिन था। आज बच्चों में मैंने एक नई बात देखी। उन्होंने प्रयोग अपनी इच्छा से करने की सोची। उन्होंने विज्ञान प्रयोग की कुछ किताबें कक्षा लाईब्रेरी में पढ़ी थीं इसलिए उन्होंने अपनी पसन्द के प्रयोग किए। मगर एक बात देखने लायक थी कि जिनको प्रयोग करना नहीं आ रहा था उनको दूसरे बच्चे सिखा रहे थे। कुछ बच्चे साइफन सिस्टम को समझ रहे थे जबकि उन्होंने कक्षा 3 में ऐसी कोई बात नहीं पढ़ी थी। कुछ लड़कियां उनके पास सीखने गईं और कहने लगीं, हमसे तो पानी नहीं खींचा जा रहा है। सभी विद्यार्थी हंसने लगे कि तुम पानी खींच नहीं रही हो तुम तो फूंक मार रही हो, पानी में बुलबुले उठ रहे हैं न

कि वह नली में चढ़ेगा। फिर एक ने बताया कि तुम शरबत नली से जैसे पीती हो वैसे खींचो।

एक बच्चे ने प्लास्टिक चढ़े बिजली के तार दिखाकर सभी से पूछा- बताओ तैरेगा या डूबेगा। तार का एक टुकड़ा प्लास्टिक से कवर था और दूसरे तार से प्लास्टिक उसने निकाल दिया था। फिर उसने पानी में डालकर देखा। यह प्रयोग सभी को मज़ेदार लगा।

8 फरवरी 2008

कक्षा- 3 के बच्चों ने सुबह स्कूल आते ही पहाड़ियों पर आज धूप-छाया का खेल देखा तो सभी छाया पर चर्चा करने लगे। वे बार-बार पहाड़ियों और बादल से ढंके सूर्य को देखते और छाया के बारे में बातें करते। फिर उन्होंने अपनी कक्षा लाईब्रेरी से छाया की खेलवाली किताब निकाली और धूप में जाकर बाहर कई सारे जानवरों की आकृतियां बनाईं जिसमें उड़ती तितली, खरगोश, कुत्ता और चिड़िया, बच्चों को सबसे ज़्यादा अच्छे लगे। वापस कक्षा में आने के बाद बोर्ड पर मैंने दो चित्र बनाए और पूछा कौन सा चित्र सही है।

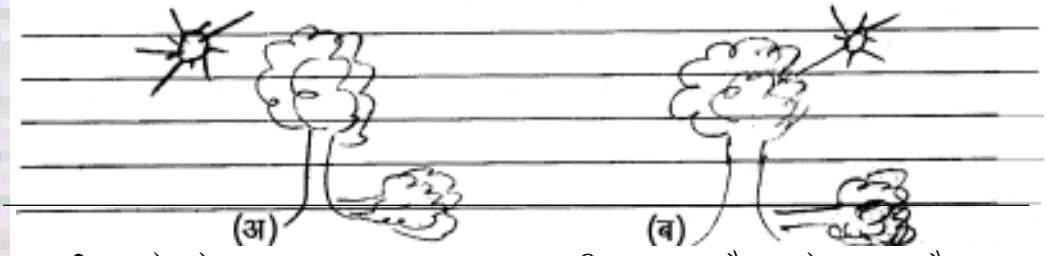

सभी बच्चों ने एक साथ कहा 'ब' वाला चित्र ग़लत है। क्यों ग़लत है? सब का जवाब था- जिस तरफ सूरज है उसी तरफ छाया नहीं होती है। थोड़ी देर बाद 'जितेन्द्र' ने कहा मैडम मुझे कुछ पूछना है। मैंने कहा बताओ- वह बोला अगर चारों तरफ़ से रोशनी आ रही हो तो फिर छाया कहां बनेगी? सभी बच्चे

सोच रहे थे एक बच्चे ने कहा कि मेरे घर पर शादी है। शादी में चारों तरफ बहुत सारी लाइट लगेगी। इन लाइटों में देखूंगा कि छाया कहां बनती है। सभी ने कहा- हां यह ठीक है। हम देखेंगे। कक्षा के अनुभव को बाहर की दुनिया से जोड़ने का यह तरीका भी बढ़िया लगा। मैंने कहा- मौका मिलने पर मैं भी ज़रूर देखूंगी।

16 फरवरी 2008

विद्यालय में विज्ञान मेले में पुस्तकों की प्रदर्शनी लगाने की बात मेरे मन में कई दिनों से चल रही थी। मैं देखना चाहती थी कि बच्चे किताबें पढ़ने में तो रुचि लेने लगे हैं, क्या ख़रीदने की तरफ़ भी उनका ध्यान जाता है या नहीं? एक दिन हमारे यहां विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र के पिटारा की ओर से पुस्तक दर्शनी लगाई गई। विज्ञान मेले में लगी पिटारा प्रदर्शनी के दौरान बच्चों ने जब मुझे पकड़-पकड़कर कहा कि मैडम देखो हमने किताबें ख़रीदीं तो मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। बच्चों का मन बहुत हो रहा था कि वे महंगी किताबें भी ख़रीदें लेकिन उनकी जेब साथ नहीं दे रही थी। चाहे बच्चों ने 2,4,7 रुपएवाली किताबें ही ख़रीदी हों परन्तु मुझे इस बात से बेहद संतोष हो रहा था कि उन्होंने अपनी टॉफी खाने के पैसों का उपयोग स्वयं की इच्छा से किताब ख़रीदने के लिए किया। कक्षा 3 के 27 बच्चों में से 5 बच्चों ने किताबें ख़रीदीं। मेरे लिए यही पर्याप्त था कि बच्चों ने किताबों का महत्त्व तो समझा।

23 फरवरी 2008

बच्चों को किसी टॉपिक पर लिखने का अभ्यास कराने से उनकी क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है इसकी जांच कार्य करने पर मुझे अपनी मेहनत सफल होती नज़र आई। जब 6-7 सप्ताह के लगातार लेखन अभ्यास के बाद मुझे कक्षा

3 के दो बच्चों ने पैराग्राफ लिखकर दिए जिसमें उन्होंने ''मेले'' के बारे में बहुत कुछ वह लिखा जो उन्होंने देखा-परखा। मेले में घूमते हैं, सामान ख़रीदते हैं, कुछ चीज़ें खाते हैं, गवरी देखते हैं, और डोलर में बैठते हैं, बहुत मजा आता है और वहां पर ध्यान रखने के लिए पुलिस वाले भी होते हैं। पहले मेरा मानना था कि ये बातें छोटे बच्चों को सिर्फ़ रटवाई जा सकती हैं लेकिन इतने कम प्रयास में ही दो बच्चों ने इतना अच्छा पैराग्राफ लिख दिया। मैं साचने पर मजबूर हो गई कि बच्चे स्वयं ही काफ़ी कुछ लिखना सीख लेते हैं यदि उनको मौक़े मिलें तो।

04 मार्च 2008

आज मैंने अपनी कक्षा में बच्चों को क्रिएटिव आर्ट्स के लिए समय दिया। दो-तीन दिन मैंने बच्चों को पूरे दिनभर कॉपी किताबों के साथ मशक्कत करने के बाद अंतिम पीरियड में छुट्टी से पहले आधा घंटा केवल अपनी मर्ज़ी से ''जो चाहो करो'' (लेकिन केवल क्लास के अंदर उपलब्ध चीजों का उपयोग करते हुए)। जो उन्हें करना पसन्द है वह करने की उन्हें छूट दी। कक्षा में बच्चों ने हंगामा मचा दिया क्योंकि किसी काम को करने वाले ज़्यादा बच्चे थे और किसी काम को करनेवाला कोई नहीं था। तो मैंनें और थोड़ी सामग्री (ड्राइंग पेपर, कलर पेपर, कलर आदि) जुटाने की बात सोची और फिर पर्याप्त सामग्री मंगवाकर उन्हें अपनी क्रिएटिविटी दिखाने का मौक़ा दिया। मुझे इतनी विविधता की आशा नहीं थी जो बच्चों ने कर दिखाई। क्लास लाइब्रेरी से उन्होंने कई किताबें करके देखो, चकमक, क्रिएटिव आर्ट्स एवं क्राफ्ट, चलो चित्र बनाएं, मैजिक पॉट आदि सभी छान डालीं। थोड़ी देर बाद डिसप्ले बोर्ड पर लगाने के लिए इतनी चीज़ें बन गईं कि जगह कम पड़ रही थी। बच्चों ने ड्राईंग, पेपर फोल्डिंग, पेपर कटिंग, मुखौटे, रंगोली और न जाने क्या-क्या तरीक़ों से अपनी क्रिएटिवनेस को काग़ज़ पर उतारा था।

05 मई 2008

विद्यालय में नया सत्र शुरू होने के साथ ही बच्चों में एक नया उत्साह दिखाई दे रहा था। वे नई किताबों के लिए बेहद उत्सुक थे। परन्तु नई किताबें उन्हें अभी उपलब्ध नहीं करवाई जा सकी थीं।इसलिए मैंने सोचा किसी ऐसे विषय पर काम शुरू करूं जिसमें बच्चों को कुछ हटकर करने का मौक़ा मिले। कक्षा-3 में बच्चों ने राजस्थान राज्य की किताबों में गणित में ''पैटर्न'' के बारे में कुछ नहीं जाना था। सो मैंने ''पैटर्न'' शुरू करना ठीक समझा और उसपर चर्चा शुरू की दो-तीन दिन से बच्चे केवल मेरे बनाए ''पैटर्न'' की नक़ल करके आगे बढ़ रहे थे। पर बार-बार कोई न कोई बच्चा बोल उठता ''पैटर्न कइवे'' और मैं विचलित होकर उसे समझाने की कोशिश करती कि 'जो दोहराया जाता है; 'जिसमें एक क्रम हमें समझ में आता है, 'जिसे आप स्वयं पहचानने का प्रयास करके आगे बढ़ा सकते है', 'वगैरह-वगैरह। बच्चे कुछ समझ रहे थे या नहीं मुझे नहीं पता चल रहा था। पाँच दिन तक ''पैटर्न'' पर काम करने के बाद एक बच्चा सुबह-सुबह पत्तियां (छोटी डाली) लेकर आया और बोला मैडम देखिए इसमें भी एक 'पैटर्न' है। ऐसे और भी चीज़ों में पैटर्न देखने की कोशिश करने लगे। जब-जब ऐसा होता है मुझे बेहद खुशी होती है। जब बच्चे अपनी दुनिया का संबंध कक्षा में सीखी हुई बातों से जोड़ते हैं तब कहीं यह एहसास मज़बूत होता है कि सीखना रटने से कहीं एक क़दम आगे बढ़े। उस दिन बच्चों ने कई प्रकार की पत्तियों को इकट्ठा करके तरह-तरह के ''पैटर्न पहचाने।

एक विनम्र अपील

बुनियादी शिक्षा को लेकर हम निरंतर बेहतर सामग्री जुटाने की कोशिश कर रहे हैं। अब तक बुनियादी शिक्षा के सैद्धान्तिक पक्षों पर काफी कुछ कहा जा चुका है। लेकिन बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु, शिक्षक प्रशिक्षण, कक्षा शिक्षण समवाय... आदि पर खालीपन महसूस किया जा रहा है।

बुनियादी शिक्षा को सही अर्थों में स्थापित करने का मतलब यही है कि हमारे पास इसके व्यावहारिक पहलुओं पर सामग्री उपलब्ध हो। बुनियादी शिक्षा से जुड़े साथियों से हम अपेक्षा करते हैं कि वे निम्न मसलों पर सामग्री भेजें–

- बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम और पाठ्यवस्तु पर।
- बुनियादी शिक्षा में शिक्षकों का प्रशिक्षण कैसे करें?
- कक्षा शिक्षण का स्वरूप क्या हो? कक्षाएं कैसे संचालित होती हैं? (शिक्षक साथी अपने अनुभव लिखकर भेजें)
- बुनियादी शिक्षा में समवाय कैसे करें?
- काम के जरिए ज्ञान का अर्जन कैसे करें?
- बुनियादी शिक्षा के माध्यम से पढ़ रहे/पढ़ चुके छात्र/छात्राओं के अनुभव।
- अन्य मसले जो आपकी निगाह में महत्वपूर्ण लगते हैं।

एक बात का जरूर ध्यान रखें कि बुनियादी शिक्षा के सैद्धान्तिक पहलुओं के बजाय व्यावहारिक पहलुओं पर सामग्री भेजें।

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

खुद भी पढ़ें, दूसरों को भी पढ़ाएं

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर की अनूठी पेशकश

पिटारा

बच्चों, अभिभवाकों, शिक्षकों और उन सब पढ़ने में दिलचस्पी रखने वालों के लिए शिक्षा पर उम्दा साहित्य

पिटारा में आप प्राप्त कर सकते हैं–

- विज्ञान, गणित, भाषा, सामाजिक अध्ययन पर गतिविधि आधारित पुस्तकें, चार्टस आदि।
- शिक्षा पर बेहतर साहित्य।
- कहानी, कविताओं पर आधारित किताबें।
- प्रयोगों और मॉडल बनाने के लिए श्रृंखलाबध्द किताबें।

यदि आप इस तरह के साहित्य की तलाश कर रहे हों तो एक बार पिटारा साहित्य जरूर देखें।

संपर्क
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र
डा. मोहन सिंह मेहता मार्ग, फतहपुरा
वि.भ. सोसायटी परिसर
उदयपुर(राज0)
फोनः 0294–2451497

''**बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश**'' विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर एवं गूजरात विद्यापीठ, आश्रम रोड़, अहमदाबाद द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित।